

“यहीं हैं निगाहें, यहीं है निशाना”

प्रस्तावित

भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन
विधेयक 2011 का खुलासा

सीमित वितरण हेतु

जनहित में

पॉपुलर एजुकेशन एण्ड एक्शन सेंटर (पीस)

ए-124/6, दूसरी मंजिल, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-16

फोन व फैक्स: 011-26968121/26858940

ईमेल: peaceact@vsnl.com

द्वारा प्रकाशित

अक्टूबर, 2011

प्रस्तावित अधिनियम

- 'मुक्त व्यापार' एवं 'स्वच्छंद बाजार' के प्रति समर्पित।
- 'बाजार प्रेरित व केन्द्रित' आर्थिक माडल, जो सामाजिक मूल्यों व जनहित के मुकाबले धन और निवेश को ज्यादा महत्व देता है, पर आधारित।
- भूमि-अधिग्रहण तथा विस्थापन-पलायन को रोकना या कम करना नहीं बल्कि इसे तेज करना।
- अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों, विशेष तौर पर विश्व बैंक के नीतिगत निर्देशों का पालन करते हुए कारपोरेट्स, कम्पनियों, पूंजीपतियों, उद्योगपतियों, रीयल स्टेट एक्टर्स के लिए ऐसी स्थितियां बनाना जिससे भूमि कब्जाने की उनकी गतिविधि में कोई बाधा उत्पन्न न हो।
- क्रेता (कम्पनियों) तथा विक्रेता (भू-स्वामियों) के बीच सीधे सौदेबाजी की प्रक्रिया को प्रोत्साहन।
- सार्वजनिक हित की अस्पष्ट व्याख्या करके इसके मन चाहे उपयोग के लिए दरवाजे खुले रखना।
- कृषि, वन, जल, पशुपालन आधारित स्थानीय लोक व्यवस्थाओं को नष्ट करना।
- मुआवजे का ज्यादा प्रलोभन देकर किसानों को बाजार के हवाले करना।
- न्यायिक प्रक्रिया का इस तरह का प्रावधान जिससे लोगों की उस तक पहुंच मुश्किल हो।
- प्रभावित लोगों में उन्हें न शामिल करना जो अपरोक्ष रूप से प्रभावित होने जा रहे हैं।

प्रस्तावित भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन विधेयक 2011 का

खुलासा

जब इस प्रस्तावित विधेयक की असली नीयत को जानने की तरफ हम आगे बढ़ें तो हमारे लिए यह बाध्यकारी हो जाता है कि उन हालात पर भी गौर करें जिन हालात की यह उपज है। जब आदिवासियों, असंगठित क्षेत्र के मजदूरों, खेतिहर मजदूरों, महिलाओं, अल्पसंख्यकों तथा खेतिहर समाज के लिए नये-नये कानूनों, कल्याणकारी योजनाओं को ईजाद किया जा रहा था तो सत्तावर्ग की 'निगाहों और निशानों' में फर्क करने की गलतियां भी की जा रही थीं। परंतु इस प्रस्तावित अधिनियम के आने और लगभग सभी की सभी राजनीतिक पार्टियों द्वारा इस मुद्दे को महत्व न देने के कारनामे ने यह सिद्ध कर दिया कि सत्तावर्ग की 'निगाहें तथा निशाना' वहीं है जो इस अधिनियम का परोक्ष/अपरोक्ष ध्येय है। यह ध्येय है उदारीकरण-निजीकरण की प्रक्रिया को और गति देते हुए भू-बाजारीकरण की वैश्विक प्रक्रिया का विश्वसनीय हमराही बनना। यह विधेयक निश्चित तौर पर बाजार की स्वच्छंदता को और सशक्त करेगा तथा इस विधेयक द्वारा अर्जित अधिकार, सत्ता को एक ऐसा वैधानिक आधार प्रदान करेगा जहां पर भूमि सहित सभी प्राकृतिक वरदानों पर कब्जा करने, मुनाफा कमाने के लिए देशी/विदेशी कारपोरेट्स, कम्पनियों, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को 'राष्ट्र-राज्य' और अधिक बाधा रहित अवसर उपलब्ध करा सकेगा। फलस्वरूप बाजार की स्वच्छंदता का विस्तार होता जायेगा।

बाजार की इस स्वच्छंदता का खामियाजा मानवता कई बार भुगत चुकी है। वर्ष 1929 में अमरीकी शेयर बाजार के ध्वस्त होने, वर्ष 1930 की महामन्दी, द्वितीय विश्व युद्ध की शुरुआत के पूर्व ही व्यापारी राष्ट्रों का आर्थिक मंदी की विभीषिका से जूझना। विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद इस गंभीर मामले पर गंभीर चिंतन मनन आरंभ हुआ। इसके चलते पाश्चात्य देशों और विशेष तौर पर मित्र राष्ट्रों— ब्रिटेन, कनाडा, फ्रांस, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड और अमरीका में 'मुक्त व्यापार' और 'स्वच्छंद बाजार' की व्यापक आलोचना की गयी थी। इस दौरान बाजार प्रेरित व केन्द्रित आर्थिक माडल जो सामाजिक मूल्यों व जनहित के मुकाबले धन और निवेश को ज्यादा तरजीह

देता है, की सार्थकता को बौद्धिक जगत में शक की निगाह से देखा जाने लगा था। कार्ल पोलानी नामक विद्वान ने उस वक्त घोषणा की थी कि 'विश्व मानवता और उसके परिवेश की बागडोर अकेले बाजार तंत्र के हाथों सौंप देना.....समूचे मानव समाज के लिए विध्वंसकारी होगा।' इसी तरह का मत व्यक्त करते हुए उस वक्त अर्थशास्त्री कींस ने कहा था कि— 'यदि मुक्त व्यापार को अपने हाल पर छोड़ दिया जाता है तब वह निश्चित ही बेरोजगारी पैदा करेगा' क्योंकि मजदूरों की संख्या कम रखकर और श्रम को मशीन द्वारा विस्थापित करके ही मुनाफा वृद्धि संभव होगी। इन विद्वानों ने 'हस्तक्षेपकर्ता राज्य' की जरूरत बताते हुए 'बाजार की स्वच्छंदता' की आलोचना की थी।

कार्ल पोलानी ने विश्व युद्ध के तुरंत बाद विकास की तत्कालीन अवधारणा की आलोचना करते हुए कहा था कि 'हम एक ऐसे विकास के चश्मदीद गवाह हैं जिसके तहत आर्थिक व्यवस्था समाज के नियमों एवं समाज के मूलभूत आधारों को इस तरह निर्धारित कराती है, जिससे कि वह सुरक्षित रह सके'। उस वक्त तो इन राष्ट्रों ने अपने आपको संकट से उबारने के लिए 'स्वच्छंद बाजार' एवं 'मुक्त व्यापार' पर नियंत्रण करने का संकल्प लेकर 'हस्तक्षेपकर्ता राज्य' की समझ को अपनाया। विश्व बैंक, आई.एम.एफ., गैट तथा यू.एन.ओ. आदि की स्थापना की। परंतु इस संकट से उबरते ही पुनः 'मुक्त व्यापार' तथा 'बाजार प्रेरित व केन्द्रित आर्थिक माडल' पर वापस आ गये। फलतः बार—बार आर्थिक मंदी, महंगाई, बेरोजगारी जैसे संकट दिन—प्रतिदिन के घटनाक्रम बनते चले गये।

यदि इस पृष्ठभूमि में मौजूदा विधेयक को विश्लेषित करते हुए इसका खुलासा किया जाय तो यह साफ हो जाता है कि यह विधेयक 'मुक्त व्यापार' व 'स्वच्छंद बाजार' तथा 'अहस्तक्षेपकर्ता राज्य' की अवधारणा को आगे बढ़ाने वाला तथा 'बाजार प्रेरित व केन्द्रित आर्थिक माडल जो सामाजिक मूल्यों व जनहित के मुकाबले धन और निवेशक को ज्यादा तरजीह देता है' पर आधारित समझ के प्रति समर्पित है।

इसी पृष्ठभूमि में यदि हम इस विधेयक का शव—परीक्षण करें तो ऐसा लगता है कि जिस प्रकार अपनी व्यवस्था को बचाने के लिए द्वितीय विश्व युद्ध के विजयी राष्ट्रों ने कुछ कल्याणकारी कार्यक्रमों की शुरुआत की थी और अमरीका में 'न्यू डील', 'अमरीकन इम्प्लायमेण्ट एक्ट' जैसे कानून बनाकर मजदूरों की दयनीय हालत तथा बेरोजगारी को नियंत्रित करने का प्रयास (प्रबंधन) किया था उसी प्रकार इस विधेयक में ज्यादा मुआवजा देने, आवास

की व्यवस्था, लगातार कुछ वर्षों तक कुछ देते रहने, पेंशन आदि (अनुच्छेद I, II, III) का प्रावधान किया गया है।

वास्तव में यह सब प्रक्रियायें इस समझ पर आधारित हैं कि 'कुशल प्रबंधन' के द्वारा 'गरीबी, बेरोजगारी, विस्थापन, पलायन, खाद्यान्न संकट' आदि को नियंत्रित किया जा सकता है। इन समस्याओं के मूल कारणों, जो मौजूदा आर्थिक व्यवस्था एवं विकास की अवधारणा की अनिवार्य पैदाइश हैं, पर विचार करने की जरूरत ही नहीं महसूस की जाती। अतएव इस विधेयक के पूर्व में ही तमाम प्रबंधकीय योजनायें लायी गयीं— वाटर मैनेजमेण्ट, वेस्ट मैनेजमेण्ट, वन अधिकार अधिनियम तथा मनरेगा आदि।

इन प्रक्रियाओं से अलग रखकर इस विधेयक का विश्लेषण प्रबंधकीय तथा कानूनी ही होगा। तमाम ऐसे लोग, चिंतक, आंदोलनकारी — जिनकी सद्‌इच्छा पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता, भूमि—अधिग्रहण के सवाल को प्रबंधकीय तथा कानूनी दायरे में ही रखकर सोचते—विचारते हैं। परंतु यह गंभीर मामला पूरी की पूरी राजनैतिक—अर्थव्यवस्था से जुड़ा है। यह लोकतंत्र के नकली स्वरूप की फर्जअदायगी से भी सत्तावर्ग की वापसी है। यह एकदम स्पष्ट है कि उदारीकरण—निजीकरण का खगोलीकरण तथा लोकतंत्र एक साथ जीवित नहीं रह सकते। इसमें किसी एक को जाना ही होगा।

पिछली शताब्दी के अन्तिम 10—15 सालों से लेकर 21 वीं शताब्दी के बीते 10 सालों में मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था अपने को अजेय कहने में बढ़-चढ़कर निमग्न है हालाँकि यह लगातार धराशायी होने की कगार पर बार—बार पहुँचती रही है। उदारीकरण—निजीकरण के भूमण्डलीकरण का नुस्खा, जिसे हमारे शासकों ने भी समस्याओं के समाधान तथा विकास का अमोघ अस्त्र मान लिया है, वास्तव में 'बाजारवादी' ताकतों के हित की एक सुविचारित कार्यनीति है। इसी कार्यनीति के तहत वर्चस्व, नियंत्रण तथा एकाधिकार के उद्देश्य तक पहुँचने के लिए कृषि, भूमि, औद्योगिक, शिक्षा, वन, खनिज, जल, आदि की नीतियों तथा कानूनों में लगातार परिवर्तन किये जाते रहे हैं तथा नागरिकों के सामने 'विकेन्द्रीकरण', 'पारदर्शिता', 'विकास', 'विश्व शक्ति', तथा उभरती अर्थव्यवस्था', 'शहरीकरण' जैसी लोक लुभावन बातें रखी जाती रही हैं।

दक्षिणपंथी रुझान, दुनिया का एक ध्रुवीय बनना तथा सफल लोगों द्वारा असफल लोगों की जिम्मेदारी से पल्ला झाड़ने की घोषणायें और साथ ही साथ भूमण्डलीकरण के नारे के तहत विश्व ग्राम की आकर्षक सूक्ति के साथ संसार की प्रत्येक वस्तु को 'ग्लोबल कमोडिटी' घोषित करने की प्रक्रियाओं ने राष्ट्र—राज्यों की सम्प्रभुता को खण्डित करते हुए एक ऐसे अघोषित विश्व

केन्द्र को स्वेच्छा या विवशतावश मान्यता दे दी या अंगीकृत कर लिया, जहाँ से तमाम नीतियों—कानूनों का निरूपण, संचालन तथा नियंत्रण किया जा रहा है। इस 'वैश्विक सत्ता' (?) के साथ हमारे शासक वर्ग भी गलबहियाँ डालने में ही अपनी स्थिरता तथा कामयाबी को देख रहे हैं।

यदि हम प्रस्तावित अधिनियम को देखें तो यह एकदम स्पष्ट हो जाता है कि देश की मौजूदा आर्थिक व्यवस्था (जो कहीं न कहीं से और किसी न किसी रूप में आर्थिक साम्राज्यवादी ताकतों द्वारा निर्देशित है) के निर्देशों के अनुरूप अपनायी गयी मुनाफा/पूँजी केन्द्रित विकास की अवधारणा की जरूरतों के मुताबिक ही वन अधिकार अधिनियम, कृषि नीति, खनिज नीति तथा विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता को स्वीकार करना, परमाणु संधि करना आदि की ही तरफ यह कानून भी प्रस्तावित किया गया है।

अपनी कार्यक्षमता की उत्कृष्टता का प्रदर्शन करते हुए ग्रामीण विकास मंत्री जयराम रमेश ने 29 जुलाई 2011 को प्रस्तावित अधिनियम को चर्चा के लिए जारी किया, संस्तुतियाँ तथा सुझाव माँगे तथा इसके लिए एक महीने का समय दिया। इस समय सीमा के समाप्त होने के एक हफ्ते के अंदर उन्होंने इस अधिनियम को संसद के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रबंध कर लिया। 126 वर्ष पुराने भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 के नये संस्करण पर लोगों की राय एक महीने में जान लेने तथा 7 दिन में उसका अध्ययन—मनन—चिंतन कर लेने वाले मंत्री जी के 'टाइम मैनेजमेण्ट' की जितनी तारीफ की जाय उतनी ही कम है। प्रधानमंत्री के विश्व शक्ति बनने के और गृहमंत्री के उग्रवाद—आतंकवाद खत्म करने के 'टाइम मैनेजमेण्ट' की तुलना में श्री रमेश का 'टाइम मैनेजमेण्ट' उन्हें 'सुपर—मैनेजर' सिद्ध करता है। हालाँकि प्रधानमंत्री तथा गृहमंत्री की पृष्ठभूमि भी 'एक्सपर्ट एवं मैनेजमेण्ट' की है परंतु श्री रमेश जैतापुर परमाणु ऊर्जा पार्क, वेदांत कम्पनी और पोस्को कम्पनी के पर्यावरण—स्वीकृति के मामलों में अपने 'टाइम बाउण्ड मैनेजमेण्ट' का लोहा पहले ही मनवा चुके हैं। अतएव जिस प्रकार पी. चिदंबरम ने वित्त मंत्री के रूप में उदारीकृत आर्थिक व्यवस्था को गति देने के बाद उसे लागू कराने के लिए 'विकास एवं सुरक्षा' की दोहरी रणनीति पर कार्य करने के लिए गृह मंत्रालय का जिम्मा संभाला है उसी प्रकार उदारीकृत अर्थ व्यवस्था के अनुरूप पर्यावरण एवं वन मंत्रालय का सफल संचालन करने के बाद जयराम रमेश ने ग्रामीण विकास मंत्रालय की गुरुतर जिम्मेदारी निभाने की प्रतिबद्धता दिखाना शुरू कर दिया है।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 में नेहरू एवं इन्दिरा गांधी के समय में कुछ

मूलभूत संशोधन करके भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया को सहज एवं सरल बनाने का प्रयास किया गया था जो अन्ततः राज्य और निजी पूँजी के हित साधने में कारगर रहा है। अभी हाल के वर्षों में 6 दिसंबर 2007 को लोक सभा के समक्ष, भूमि अर्जन (संशोधन) बिल 2007 और पुनर्वास पुनःस्थापन बिल 2007, प्रस्तुत करके संसद की ग्रामीण विकास से सम्बन्धित स्थायी समिति को इसके परीक्षण तथा संस्तुतियों के लिए सौंप दिया गया था। लगभग एक साल बाद 21 अक्टूबर 2008 को संसदीय समिति ने अपनी रिपोर्ट (39 वीं एवं 40 वीं रिपोर्ट) लोक सभा एवं राज्य सभा के समक्ष प्रस्तुत की। स्थायी समिति की संस्तुतियों के आधार पर इस प्रस्तावित बिल में सरकार की तरफ से कुछ संशोधन होने थे। यह दोनों बिल सरकारी संशोधनों के साथ लोक सभा द्वारा 25 फरवरी 2009 को पारित कर दिये गये थे परंतु 14 वीं लोकसभा के भंग हो जाने के नाते यह कार्य अधूरा ही रह गया। संभवतया सत्तारूढ़ दल इस बिल के पारित होने के बाद चुनाव में होने वाली क्षति से घबराकर इसे टाल गया था दूसरा कारण यह था कि वर्ष 2008 की आर्थिक मंदी की वजह से विकास के वैश्विक नियंत्रणों की तरफ से कोई गंभीर दबाव नहीं बना होगा। हालाँकि यह वही दौर था जब भारत की केन्द्रीय सरकार अपने सहयोगी दलों के विरोध को दरकिनार करके तथा अपनी सरकार को दौंव पर लगाकर 'अमरीका-भारत परमाणु सहयोग समझौता' करने में कामयाब हो गयी थी तथा संसद में 'वोट फार नोट' का मामला भी उछल चुका था।

15 वीं लोकसभा के गठन तथा यू.पी.ए. की पुनः सत्ता में वापसी ने मनमोहन-चिदंबरम-अहलुवालिया जो कि उदारीकरण के प्रबल समर्थक हैं, को एकबार फिर से निर्णय लेने के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचा दिया। तभी से इस बात की लगातार कवायद की जा रही थी कि भूमि अर्जन अधिनियम में आवश्यक बदलाव करके, इसे विकास की मौजूदा अवधारणा को अमली जामा पहनाने के लिए ज्यादा से ज्यादा कारगर बनाया जाय।

गैट, डंकल प्रस्ताव तथा विश्व व्यापार संगठन के दौर से आगे बढ़ते हुए कृषि, वन, खनिज, सामूहिक संपदा के संदर्भ में सरकारी नीतियों- कानूनों ने कारपोरेट फारमिंग, एस.ई.जेड., वनों के बड़े हिस्से से आदिवासियों की बेदखली, पेटेंट कानून, कृषि को अनाकर्षित बनाने के लिए सबसिडी का खात्मा, रिटेल बाजार में बड़ी पूँजी को इजाजत, परमाणु ऊर्जा को वक्त की जरूरत बताने तथा शिक्षा-स्वास्थ्य-पानी तक के निजीकरण का कार्य एक एक करके सम्पन्न कर लिया था। नरसिंहा राव के कार्यकाल में शुरू की गयी आर्थिक नीति, जिसके सिरमौर तत्कालीन वित्तमंत्री जो मौजूद समय में

प्रधानमंत्री हैं डा. मनमोहन सिंह थे, से लेकर आज तक लगभग उसी आर्थिक नीति का अनुशरण जारी रहा है। हालाँकि इस 20 साल के दौर में अन्य पार्टियों, गठबंधनों— संयुक्त मोर्चा, राष्ट्रीय लोकतांत्रिक मोर्चा की सरकारें भी केन्द्रीय स्तर पर आयीं और गयीं। वी.पी. सिंह, अटल बिहारी वाजपेयी, चन्द्रशेखर, देवगौड़ा, इन्द्रकुमार गुजराल सरीखे प्रधानमंत्री 13 दिन से लेकर पूरे कार्यकाल तक प्रधानमंत्री रहे परंतु आर्थिक नीतियों में कोई गुणात्मक बदलाव नहीं आया। इस दौर में भी केन्द्र के साथ ही साथ राज्य सरकारें भी इस आर्थिक नीति को बहुत तेजी के साथ लागू करने में जुटी रहीं, इस पुनीत कार्य में वे पार्टीगत मतभेदों में उलझने से परहेज करती रहीं तथा विकास के महायज्ञ में वैचारिक, सैद्धांतिक तथा पार्टीगत मतभेदों से निरपेक्ष बनी रहीं।

गांधी के ग्राम स्वराज्य की अवधारणा को उनके प्रिय शिष्य नेहरू ने ही खारिज कर दिया था, नेहरू की समाजोन्मुखी मिश्रित अर्थ व्यवस्था भी थोड़े दिन ही ठहर पायी, इन्दिरा गांधी अन्तिम प्रधानमंत्री थीं जिन्होंने वर्ष 1983—84 में किसी अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थान (अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष) की कर्ज की शर्तों को मानने से इंकार करके कर्ज की दूसरी किश्त स्वीकार नहीं की थी। फिर राजीव गांधी के शासन काल में हर नीति के आगे 'नयी' शब्द जोड़कर जो संचार क्रांति और 21 वीं शताब्दी के सुनहरे सपनों का नारा लगाया गया वह लगातार आगे ही बढ़ता गया। उनके उत्तराधिकारी नरसिंहा राव उनके सपनों को साकार करने में डट गये।

इस बीच पूँजी के चरित्र में भी तेजी के साथ बदलाव आ रहा था। ज्ञात इतिहास में अपने सबसे निर्मम तथा अमानवीय स्वरूप में पूँजी पहुँच गयी है। पूँजी के वैश्विक नियंताओं ने अविकसित, विकासशील देशों द्वारा खड़े किये गये समानान्तर ढांचों, प्रक्रियाओं, मंचों को धराशायी कर दिया। इसमें गुट निरपेक्ष आंदोलन (नाम) तथा सार्क जैसे मंचों को रखा जा सकता है।

दो—दो विश्व युद्धों से सबक लेते हुए कोई ऐसी जुगत बैठाने की बात बाजार की ताकतों ने तय की जिससे बाजार की प्रतिस्पर्धा सहज और शांतिपूर्ण ढंग से हो। इसके लिए यह आवश्यक था कि ऐसे उत्पादों पर ध्यान केन्द्रित किया जाय जिसकी मांग कभी कम न हो और सभी कर्ता मुनाफा भी अर्जित कर सकें। अतएव यह सहमति बनी कि भोजन, पानी, शिक्षा—स्वास्थ्य को मुनाफे के केन्द्र के रूप में विकसित किया जाय। इसके लिए दो बातों की आवश्यकता थी, पहली—लोकतंत्र एवं लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा की समाप्ति, बाजार में राज्य के हस्तक्षेप की समाप्ति तथा दूसरी प्राकृतिक

संसाधनों (वन, जल,, खनिज, भूमि) पर नियंत्रण। अपनी इन जरूरतों की पूर्ति के लिए विश्व व्यापार संगठन का गठन तथा इसके फलस्वरूप राष्ट्र-राज्यों की सम्प्रभुता का खात्मा, बाजारवादी ताकतों की एक और विजय थी। आगे का मामला साफ था लोकतांत्रिक संस्थानों का अलोकतांत्रिक कार्यों के लिए इस्तेमाल, निजीकरण का वर्चस्व।

मौजूदा प्रस्तुत भूमि अर्जन अधिनियम 2011 इन दोनों मामलों की पूरी निष्ठा के साथ पूर्ति करता है। पूरे देश की आबादी के हित के विपरीत, संसद जो सर्वोच्च लोकतांत्रिक संस्था है, इस अधिनियम को पारित करने के लिए तत्पर है। प्रस्तावित अधिनियम निजी पूँजी (देशी-विदेशी) के वर्चस्व का रास्ता साफ करता है। यह सब उन सांसदों द्वारा किया जायेगा जो संविधान के प्रति आस्था व्यक्त करने की सौगंध खाते हैं और संविधान की उद्देशिका में 'समता, समाजवाद और लोक कल्याणकारी राज्य' जैसे उद्देश्य शामिल हैं। सवाल यह उठता है कि आखिर यह सब क्यों हो रहा है ? किसके दबाव तथा निर्देश में हो रहा है ? बहुत पीछे के दौर को यदि हम छोड़ भी दें तो भी हाल के सालों की घटनाओं के उदाहरणों को लेकर इसे समझा जा सकता है। भूमि अधिग्रहण का ही उदाहरण लें।

यदि हम प्रस्तावित भू-अर्जन अधिनियम 2011 के प्रावधानों को लें तो साफ तौर पर यह दिखता है कि भारत में भूमि सम्बन्धी कानूनों और नीतियों (केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारों के स्तर पर) का निर्धारण वैश्विक राजनैतिक अर्थव्यवस्था तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों के दिशा निर्देश में किया जा रहा है। इसमें किये गये प्रावधानों को विश्व बैंक के नीतिगत दस्तावेजों जैसे रिपोर्ट संख्या 38298 आइएन, जुलाई 9, 2007 जो दक्षिण एशिया क्षेत्र की इण्डिया कण्ट्री मैनेजमेण्ट युनिट की तरफ से 'भारत में भूमि नीतियाँ : विकास एवं गरीबी उन्मूलन' के लिए और विश्व बैंक द्वारा वर्ष 1996-97 में भारत की शहरी भूमि के बारे में जारी किये गये दिशा निर्देशों में हू-बहू देखा जा सकता है। इसमें ऐसे भी दिशा निर्देश हैं जिनको लागू कराने या जिनका कानून बनवाने के लिए कुछ सामाजिक संगठनों ने बड़ी-बड़ी यात्रायें करके, 'कन्सल्टेशंस आर्गनाइज' करके तथा वैकल्पिक कानूनी ड्राफ्ट बनाकर, माँग तक भी कर डाली है। विश्व बैंक के इन नीतिगत घोषणाओं तथा दिशा निर्देशों को 'भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन विधेयक 2011' (प्रस्तावित) में किस तरह समाहित किया गया है उसे जानना महत्वपूर्ण है— विश्व बैंक नीतिगत घोषणा

करता है कि (वर्ष 2007, 9 जुलाई) :-

1. भूमि की उपलब्धता (लीजिंग) वहाँ भी उपलब्ध करायी जाय जहाँ यह प्रतिबंधित है।
2. भूमि के खरीद-फरोख्त (जहाँ यह प्रतिबंधित है) के अवरोध को स्थायी रूप से हटाया जाय तथा तात्कालिक तौर पर लीज का प्रावधान हो।
3. कृषि भूमि को गैर कृषि प्रयोजन हेतु बिक्री करने पर लगी रोक हटायी जाय।
4. भूमि अर्जन हेतु भूमि अधिग्रहण अधिनियम की बाध्यता सम्बन्धी विधान की समीक्षा की जाय तथा किसानों या उनके प्रतिनिधियों को जरूरतमंद निवेशकर्ताओं के साथ सीधे तौर पर भूमि की खरीद-फरोख्त के बारे में सौदा करने और बेचने की आजादी होनी चाहिए, 'यह कार्य किसान सरकार के माध्यम से ही कर सकते हैं'- इस तरह की वैधानिक बाध्यता खत्म की जानी चाहिए। सरकार के माध्यम से किसानों की भूमि के अर्जन से उन्हें मुआवजा भी बहुत कम मिलता है।

विश्व बैंक के इन नीतिगत निर्देशों को प्रस्तावित अधिनियम में यथावत रखा गया है। इससे उन सामाजिक संगठनों की यह माँग भी पूरी हो जाती है जिसके तहत वे चाहते थे कि निवेशकर्ता सीधे तौर पर किसानों से सौदा करें उसी तरह की माँग भारत के भू.पू. प्रधानमंत्री स्व. वी.पी. सिंह भी करते रहे थे। किसानों को कम मुआवजा (जब सरकार के माध्यम से भूमि का अधिग्रहण होता है) की विश्व बैंक की चिंता का भी प्रस्तावित अधिनियम में ध्यान रखा गया है। यह मुआवजा बाजार दर से 2 गुणा तक होगा तथा कुछ सालों तक नियमित रूप से प्रति माह धन की प्राप्ति भी होती रहेगी। विश्व बैंक का दबाव और ज्यादा मुआवजा देने की सरकार की घोषणा का कारण रहस्यपूर्ण न होकर एकदम स्पष्ट है 'किसी भी तरह से जमीन मिले' वाली नीति।

इसी तरह अगस्त 1996 में युनाइटेड नेशंस डेवलेपमेण्ट प्रोग्राम (यू.एन.डी.पी.), युनाइटेड नेशंस सेंटर फार ह्यूमन डेवलेपमेण्ट सेटेलमेण्ट (यू.एन.सी.एच.एस.) एवं विश्व बैंक द्वारा 'अरबन मैजमेण्ट प्रोग्राम' हेतु जारी शहरी भूमि नीतियों में सुधार हेतु दिशा निर्देश जारी करते हुए कहा गया कि 'भूमि विकास कार्यक्रमों को निजीकृत करना- अत्यधिक महत्वाकांक्षी सुधार कार्यक्रम होगा' इसके लिए भूमि बाजार का आकलन, भूमि प्रबंध प्राधिकरणों का विकेन्द्रीकरण, शहरी भूमि कानूनों नीतियों का विनयमितीकरण, भूमि विकास के मामलों में सार्वजनिक

एजेंसियों की भूमिका कम करना, शहरी भूमि नीति के टिकाऊ ढांचागत निर्माण हेतु निवेश कार्यक्रम के साथ समन्वय करना आदि के निर्देश दिये गये थे। परिणामस्वरूप रीयल इस्टेट एक्टर्स, ए.डी.बी., यू.एन.डी.पी., पानी के व्यापार से जुड़ी वैश्विक कम्पनियों के लिए दरवाजे खोल दिये गये और जे.एन.यू.आर. एम. का जन्म हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रस्तावित कानून में 1996 एवं वर्ष 2007 के विश्व बैंक एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों के निर्देशों को पूरी तरह समाहित किया गया है। ऐसा होना स्वाभाविक है क्योंकि यहीं से हमारे शासकों को अपनी अर्थव्यवस्था तथा इसके अन्तर्गत विकास की मौजूदा अवधारणा को अपनाने की प्रेरणा मिली है। इसी वैश्विक मठ से दीक्षित विद्वानों के हाथ में इस वक्त देश के नियोजन, संचालन, नियंत्रण की लगाम है। गुरु दीक्षा से नकार हमारी संस्कृति में वैसे भी अपकीर्तिकारी माना जाता रहा है।

अब दूसरा गंभीर सवाल है कि हमारे शासक पिछली गलतियों और अमानवीय कृत्यों से सबक लेने को तैयार क्यों नहीं हैं ? बाजार के बढ़ते वर्चस्व ने दो-दो बार पूरी दुनिया को विश्व युद्ध में झोंका है, महामंदियों के दौर में पूरी दुनिया को ढकेला है। अभी हमारे वित्तमंत्री तथा प्रधानमंत्री भी यह कह रहे हैं (24 सितंबर, 2011, न्यूयार्क एवं वाशिंगटन में दिये गये वक्तव्य) कि दुनिया एक बार फिर से आर्थिक मंदी की तरफ बढ़ रही है, फिर भी बाजार को असीमित अधिकार देने तथा निर्द्वन्द्व छोड़ने की प्रक्रिया क्यों दिन प्रति दिन तेज की जा रही है। **इस प्रक्रिया का पूरा प्रभाव प्रस्तावित अधिनियम पर साफ-साफ दिख रहा है जिसमें निजीकरण, शहरीकरण तथा प्रत्यक्ष देशी-विदेशी निवेश के लिए मुख्य रूप से सरल और सहज रास्ता बनाया गया है।**

हालाँकि बाजार की स्थापना का श्रेय पूँजीवादी व्यवस्था को नहीं दिया जा सकता परंतु उसके विस्तार, सर्वव्यापकता तथा चरित्र में मूलभूत परिवर्तन की जिम्मेदारी इसी के नाम है।

बाजार को स्वच्छंद छोड़ने के दुष्परिणामों के बारे में अर्थशास्त्री बार-बार चेतावनी देते रहे हैं। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद ब्रेटनवुड सम्मेलन के मौके पर पोलानी तथा कींस जैसे अर्थशास्त्रियों ने शासकों को चेतावनी दी थी कि बाजार को स्वच्छंद छोड़ने के परिणाम केवल अर्थव्यवस्था के लिए ही नहीं बल्कि पूरी मानवता के लिए खतरनाक होंगे। इन विद्वानों ने शासकों से कहा था कि सरकारों को बाजार पर नियंत्रण रखना चाहिए।

लेकिन इस चेतावनी का असर शासकों पर ज्यादा दिन तक कायम न रह सका। विश्व युद्ध के घावों के भरने तथा हुई क्षतियों की पूर्ति होते ही शासकों ने फिर से धीरे-धीरे बाजार को स्वच्छंद छोड़ना शुरू कर दिया था और आज यह ताकतें दुनिया के अधिकांश शासकों को अपनी शर्तों तथा अपने हित में कार्य करने हेतु या तो सहमत करने में कामयाब हुई हैं अथवा राजनीति में हस्तक्षेप करके ऐसा करने के लिए शासकों को विवश कर चुकी हैं।

विश्व व्यापार संगठन के गठन तथा उसमें सन्निहित नियम, कायदे, कानून और शर्तों ने इसकी सदस्यता लेने वाले राष्ट्र-राज्यों की न केवल सम्प्रभुता समाप्त कर दी है बल्कि उन्हें एक बिचौलिये की भूमिका तक सीमित कर दिया है। विश्व व्यापार संगठन की शर्तों-निर्यातोन्मुखी उत्पादन, खुला व्यापार, बाजार एवं व्यापार में राज्य का न्यूनतम हस्तक्षेप, देशी-विदेशी के नाम पर भेदभाव की समाप्ति, माल और मुनाफे को कहीं पर भी लाने-ले-जाने-निवेश करने की छूट, निजीकरण को बढ़ावा, सीमा शुल्कों की समाप्ति तथा स्थानीय मुद्रा का अवमूल्यन तथा इस प्रक्रिया के वैश्वीकरण में बाधक बन रही नीतियों, कानूनी प्रावधानों, राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय संधियों और ऐसे ढांचों-प्रक्रियाओं की समाप्ति जो विकास (?) में बाधक हैं, को हमारा शासकवर्ग स्वीकार कर रहा है तो सहज ही समझा जा सकता है कि विश्व व्यापार संगठन की सदस्यता लेने तथा उसकी शर्तों पर सहमति देने के नाते इस पर अमल करना हमारे शासकों की बाध्यता है। यदि इस रोशनी में प्रस्तावित अधिनियम को देखें तो यह साफ पता लगता है कि इस अधिनियम के प्रावधान इसी प्रक्रिया को विस्तार देने हेतु कटिबद्ध हैं।

वास्तव में यह प्रस्तावित कानून नवउदारवादी नीतियों और प्रक्रियाओं को आगे बढ़ाने की जरूरतों को ध्यान में रखकर बनाया गया है। आर्थिक विकास के लिए इसे आवश्यक बताया जा रहा है तथा विद्वान अर्थशास्त्री प्रधानमंत्री जिन्हे संत अन्ना ने हाल में 'ईमानदार' का तमगा थमा दिया है और देश-विदेश की विद्वतमण्डली जिनके विकासोन्मुखी कार्यों को 120 करोड़ की आबादी वाले भारत के लिए नायब-नुस्खा बताती रहती है, वास्तव में विकास के साथ ही साथ भूख गरीबी, बेरोजगारी तथा आर्थिक विषमता भी बढ़ाती जा रही है। इण्टरनेशनल फूड पालिसी रिसर्च के मुताबिक भारत में भूखे लोगों की तादात 20 करोड़ है और असंगठित क्षेत्र की उद्यमिता के लिए नेशनल कमीशन की गणना कहती है कि देश की 83.7 करोड़ आबादी रोजाना 20 रुपये से कम पर गुजारा करती है जिसका तात्पर्य है देश

की 77 फीसदी आबादी भुखमरी की कगार पर है। वर्ष 1993-94 और 2006-07 के बीच प्रतिव्यक्ति प्रतिमाह खाद्यान्न की खपत लगातार घटती गयी है—शहरी क्षेत्रों में क्रमशः 13.4 से 11.7 किलो तथा ग्रामीण क्षेत्रों में 10.6 से 9.6 किलो, हो गयी है। प्रधानमंत्री का कहना है खाद्यान्न उपभोग में कमी का कारण यह है कि लोग फल, अण्डे, बिस्कुट, मांस का सेवन ज्यादा करने लगे हैं। दुनिया के स्वयं-भू सर्वोच्च कोतवाल अमरीकी राष्ट्रपति का कहना है कि भारत के लोग ज्यादा खाते हैं अतएव वहां खाद्यान्न संकट है। नेशनल सेम्पल सर्वे आर्गनाइजेशन की 66वें दौर की रिपोर्ट कहती है वर्ष 2004-05 से 2009-10 के दौरान रोजगार के अवसरों में 0.34 प्रतिशत (ग्रामीण क्षेत्रों) तथा 1.36 प्रतिशत (शहरी क्षेत्रों) में ऋणात्मक घटाव आया है। पंजाब कृषि विश्व विद्यालय का ताजा अध्ययन बताता है कि पंजाब के 89 फीसदी किसान बुरी तरह कर्ज से डूबे हैं, यहां प्रति हेक्टेअर खेत पर 50,140 रुपये का कर्ज है।

कृषि में अग्रणी पंजाब (जो हरित क्रांति की आत्मा कहा गया था) जैसे प्रांत में औसतन एक किसान परिवार की एक महीने की कमाई 3,200 रुपये है। यह कमाई एक दिहाड़ी मजदूर की मासिक कमाई से भी कम है। नेशनल क्राइम रिकार्ड ब्यूरो का कहना है कि 1997 से 2010 के बीच में पूरे देश में 2,50,000 किसान आत्महत्या कर चुके हैं, पंजाब में तो केवल 2 जिलों में ही 9 साल के अंदर 2990 किसान आत्महत्या कर चुके हैं। हरित क्रांति के 40 साल बाद खेती हर एक वर्ष किसानों को दलदल में धकेलने के साथ अपना अर्थ लगातार खोती जा रही है। भूमि अधिग्रहण के लिए प्रस्तावित यह अधिनियम (2011) कृषि और किसानों की चिंता से मुक्त है।

भूमि सुधारों की अवहेलना करते हुए कृषि के तकनीकी पक्षों पर केन्द्रित 'हरित क्रांति', जो ज्यादा से ज्यादा लागत (पूंजी, कृषि उपकरणों, ट्रैक्टरों, ट्यूबवेल्स, उर्वरकों, कीटनाशकों तथा उन्नत बीजों) की मांग करती थी का यह परिणाम होना ही था और अब दूसरी हरित क्रांति का भी नारा दिया जा रहा है। भारत में अंगीकृत की गयी विकास की अवधारणा के कारण कृषि एवं भूमि नीतियों में किये गये बदलाव ने भारत में कृषि और कृषि आधारित आबादी को हाशिये पर ढकेलते हुए यह भी सिद्ध करने का लगातार कुचक्र किया है कि देश के विकास तथा सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान लगातार घटते हुए न्यूनतम स्तर पर आ गया है। हमारे देश का शासक वर्ग

लगातार भ्रामक बयान देता रहा। यूरोप और अमरीका के कसीदे पढ़ते हुए यह कहा जाता रहा कि यह देश कब तक कृषि—आधारित व्यवस्था पर चलेगा। बहुत हो गया 5 हजार साल तक लीक पर चल लिए अब नया रास्ता बनाना होगा। औद्योगिक क्रांति के वगैर काम नहीं चलेगा। अतएव उद्योगों, शहरों, बाजारों के लिए जमीनें खाली करो। इसी अंगीकृत/प्रत्यारोपित समझ को सशक्त करने के लिए प्रस्तावित अधिनियम 2011 नये कलेवर में लाया जा रहा है।

परंतु हमारे शासक वर्ग जब यह तर्क देते हैं तो वे तमाम तथ्यों को जानबूझ कर छिपा भी लेते हैं। वे यह नहीं बताते कि अपने ही संसाधनों से की जाने वाली परम्परागत कृषि को बदलकर जब पूंजी आश्रित हरित क्रांति का नारा दिया गया तो उसके फलरूपरूप ग्रामीण भारत में आर्थिक विषमता और बढ़ती चली गयी। वे यह भी नहीं बताते कि इंग्लैण्ड में औद्योगिक क्रांति के यह प्रयोग 18वीं—19वीं शताब्दी में किये गये थे, शुरुआती दौर में इसके अच्छे परिणाम आये पर आगे चलकर किसानों की संख्या घटती चली गयी। फलतः 1740—1850 के दौर में किसानों की संख्या इंग्लैण्ड में घटकर चौथाई रह गयी थी। खेतों पर कारखाने खड़े हो गये थे। किसान मजदूर बनने लगे। ब्रिटिश समाज का मूल चरित्र खत्म होने लगा। अंजाम सामने हैं। आज इंग्लैण्ड तेजी से बदहाल होता हुआ देश है जबकि आज से 70—80 साल पहले तक उसकी हुकूमत में सूरज नहीं डूबता था। यूरोप के अधिकांश देशों की हालत यही है। उनके हथ्र से हमारे शासक सबक लेने को तैयार नहीं हैं। संयुक्त राज्य अमरीका में भी किसान अपने आपको कृषि से अलग करने के लिए विवश किये जा रहे हैं। खाद्यान्न, बीज, कीटनाशक, कृषि यंत्रों तथा उर्वरकों पर नियंत्रण करने वाली कम्पनियों के द्वारा किसानों पर कसी जा रही नकेल ने ऐसी हालत पैदा कर दी है। यह कम्पनियां भोजन से अकूत मुनाफा कमाने की नीयत से ऐसी हालात पैदा कर रही हैं कि किसानों की जमीनें भी उनके कब्जे में आयें और 'कारपोरेट फार्मिंग' का रास्ता अबाध गति से प्रशस्त हो तथा कृषि का भी रूपांतरण उद्योग के रूप में हो सके।

आर्थिक विकास की इसी असलियत को और गति देने के लिए कृषि नीति, औद्योगिक नीति, आर्थिक नीति, वन नीति आदि में परिवर्तन, सुधार बड़ी तेजी के साथ किया जा रहा है। भूमि अधिग्रहण अधिनियम 2011 के प्रस्तावित संस्करण को भी इसी

प्रक्रिया का अविभाज्य और अग्रिम कदम माना जाना चाहिए।

करोड़ों लोगों का विस्थापन, ग्रामीण अर्थव्यवस्था का खात्मा, भुखमरी, पलायन—विस्थापन, असमानता की बढ़ती खाई, आत्म हत्यायें, अमानवीय शर्तों पर काम करने की विवशता इसी विकास की अवधारणा की उपज हैं जिसे पिछली 2 दशाब्दियों की सघन उदारीकरण—निजीकरण की प्रक्रियाओं ने तीव्रतर कर दिया है। इसकी तीव्रता का अंदाजा छत्तीसगढ़ राज्य के जशपुर जिले के उदाहरण से समझा जा सकता है। इस जिले का पूरा क्षेत्रफल 6205 वर्ग किलोमीटर है, यहां 122 बड़े उद्योगों की स्थापना का प्रस्ताव है जिसके लिए 6023 वर्ग किलोमीटर जमीन की जरूरत होगी। अर्थात् इन उद्योगों की स्थापना के बाद जिले की 182 वर्ग किलोमीटर जमीन ही बचेगी। जशपुर जिले में यह आर्थिक विकास, विश्व शक्ति तथा उभरती अर्थव्यवस्था के भारतीय संस्करण का 'अतुलनीय उदाहरण' होगा जिसके तहत पूरे के पूरे जिले की आबादी को ही विस्थापित कर दिया जायेगा।

इन परिस्थितियों में भोजन का अधिकार अधिनियम, ईमानदार पारदर्शी सरकार, सूचना का अधिकार, सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, कल्याणकारी योजनाओं को नगद से जोड़ना, वन अधिकार अधिनियम, पंचायती राज कानून, पेसा कानून तथा भारतीय संविधान की 5वीं अनुसूची कितना काम आयेगी यह आगे आने वाला समय बयान करेगा।

अतएव इस प्रस्तावित अधिनियम के निहितार्थ को जानने—समझने के लिए सबसे पहले यह स्पष्टता आवश्यक है कि भूमि, जल, जंगल, खनिज के बलात नियंत्रण का मामला कोई कानूनी दाव पेंच या न्यायालयों में बहस, दलील, वाद या पी.आई.एल. का मामला नहीं है बल्कि यह सीधे तौर पर राजनीतिक अर्थव्यवस्था का मामला है। किसी राजनीतिक मामले से निपटने का कारगर तरीका राजनीतिक ही हो सकता है। 1894 में बनाये गये भूमि अधिग्रहण अधिनियम और नेहरू तथा इन्दिरा के समय में किये गये संशोधनों को इस नजरिये से देखने की जरूरत है कि व्यवस्था को जब जैसी जरूरत महसूस हुई तब उसने उसी ढंग से इस कानून के निर्माण या संशोधन का कार्य किया। व्यवस्था को चलाने, बचाने, संचालित करने के लिए राजसत्ता अपनी भूमिका निभाती है और भारत के संसदीय लोकतंत्र का इस्तेमाल राजसत्ता इस प्रयोजन हेतु करती रही है।

आज जब भोजन, पानी, दवा तथा शिक्षा को भी ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाने के एजेण्डे में शामिल कर लिया गया है, पूंजी की रक्षा के लिए

‘परमानेण्ट एसेट्स’ के रूप में भूमि को सुरक्षित जरिया माना जा रहा है, बाजार का नियंत्रण बेकाबू तथा निरंकुश होता जा रहा है तथा देश की अर्थव्यवस्था में देशी-विदेशी ‘प्राइवेट एक्टर्स’ की भूमिका चरम पर है तो ऐसे समय में औपनिवेशिक दौर के 1894 का कानून, आज के आर्थिक साम्राज्यवाद के दौर की जरूरतों को पूरा करने में नाकाफी लग रहा है। इसलिए इस कानून में बदलाव अपरिहार्य हो गया है क्योंकि अब व्यवस्था को संचालित करने तथा उसकी गति को तीव्रतम करने के लिए इससे काम नहीं चल रहा था। अब और ज्यादा गैर लोकतांत्रिक, निरंकुश तथा पूर्णतया केन्द्रीकृत कानून की जरूरत व्यवस्था को आन पड़ी है। जहां पर भूमि रिकार्ड कम्प्यूटराइज्ड हों, भूमि के बारे में सारा विवरण साइट्स पर उपलब्ध हो— भूमि का आकार-प्रकार तथा मालिक का नाम आदि, भूमि के लेन-देन में कोई बाधा न हो, ‘बेटर गवर्नेंस’ के जरिये ‘टाइम बाउण्ड’ कार्य हो तथा ‘न्यायालयों के फैसले’ तथा ‘सूचना प्राप्ति’, ‘सेवा प्राप्ति’ आदि भी टाइम बाउण्ड तथा पारदर्शी हों। भूमि के लेन-देन में सरकार का कोई हस्तक्षेप न हो।

इस नजरिये से हमें नये प्रस्तावित भूमि अधिग्रहण कानून जिसके साथ पुनर्वासन व पुनर्व्यवस्थापन शब्द भी जुड़ा है, देखने की जरूरत है।

वर्ष 1894 वाले कानून में जो कुछ थोड़े बहुत ऐसे प्रावधान थे जो भू-स्वामियों के हित की रक्षा कर सकते थे, न्यायपालिका को महत्व देते थे, अफसरशाही एवं केन्द्रीयता पर रोक लगा सकते थे, भूमि उपयोग के रूपांतरण पर रोक लगाते थे तथा निजी क्षेत्र को खुली लूट की इजाजत नहीं देते थे, को भी सिरे से नकार दिया गया है। यहां पर यह भी गौर करने की जरूरत है कि विदेशी कम्पनियों के स्थायी एसेट्स खरीदने की बाधाओं को दूर करने और ऐसे कानून जो भू-स्वामियों के हितों की एक सीमा तक रक्षा कर सकते थे उन्हें ठंडे बस्ते में डाल देने या अधोषित रूप से चुपचाप समाप्त कर देने के बाद इस प्रस्तावित अधिनियम को लाया गया है।

अतएव जब कुछ लोग 1894 के कानून को रद्द करने तथा नये भूमि अधिग्रहण कानून बनाने की मांग कर रहे थे तो संभवतया उन्होंने यह कल्पना नहीं की रही होगी कि आगामी कानून और भी ज्यादा विनाशकारी सिद्ध होगा। कई लोग तो नये कानून का मसौदा भी तैयार करने में अपनी पूरी शक्ति-क्षमता का इस्तेमाल करते भी नजर आये। हरियाणा एवं उत्तर प्रदेश की राज्य सरकारों ने जब अपने अपने राज्य के लिए भूमि अधिग्रहण के

कानूनों—नियमों की घोषणा की तब भी यह नहीं समझा जा सका कि संसद में पेश होने वाला कानून कैसा होगा ?

अभी संसद में पेश किये गये नये अधिनियम भूमि अर्जन तथा पुनर्वासन व पुनर्व्यवस्थापन विधेयक 2011 को यदि हम देखें तो यह साफ दिखता है कि यह प्रस्तावित कानून कितना खतरनाक तथा जन विरोधी, प्रकृति विरोधी और अन्ततः मानवता विरोधी है।

सरकार की चिंतायें तथा प्रस्तावित अधिनियम का उद्देश्य:

प्रस्तावित भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन विधेयक 2011 को संसद में पेश करते समय ग्रामीण विकास मंत्री ने 'उद्देश्यों एवं कारणों' को स्पष्ट करते हुए अपने विचार लिखित रूप में व्यक्त किये जो उनकी चिंताओं और उद्देश्यों को स्पष्ट करते हैं। 1894 के भूमि अर्जन कानून को बदलने के पीछे वे तर्क देते हैं कि इस कानून के उपबंध "प्राइवेट भूमि और सम्पत्ति के अस्वैच्छिक अर्जन के लिए राज्य की कानून की शक्तियों के प्रयोग से सम्बन्धित कतिपय मुद्दों से निपटने में अपर्याप्त पाये गये हैं साथ ही अधिनियम, प्रभावित व्यक्तियों और उनके कुटुंबों के पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन के मुद्दों का समाधान नहीं करता"। आगे कहा गया है कि इस अधिनियम (1894) के "उपबंधों का उपयोग कम्पनियों के लिए प्राइवेट भूमियों के अर्जन के लिए भी किया जाता है, जब भूमि की व्यवस्था 'इच्छुक विक्रेता-इच्छुक क्रेता' के आधार पर प्राइवेट बातचीत के माध्यम से कम्पनियों द्वारा की जा सकती है.....तब यह (अधिनियम 1894) राज्य के ऐसे हस्तक्षेप की वांछनीयता पर बार-बार प्रश्नचिन्ह लगता है।" [प्रस्तावित अधिनियम के 'उद्देश्यों एवं कारणों का कथन' से उद्धरित (1 एवं 2)]। इसके अलावा वे भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 को निरस्त करके नया अधिनियम बनाने के कारणों में प्रभावित व्यक्तियों को समुचित मुआवजा-पुनर्वास एवं उनके पुनःस्थापन, कानून की विसंगतियों को दूर करने, एकीकृत कानून बनाने तथा बार-बार संशोधनों की वजह से कायम विसंगतियों को दूर करने तथा कानून में एकरूपता एवं स्पष्टता लाना आदि को रखते हैं।

प्रस्तावित विधेयक के पहले ही पैराग्राफ में इसके उद्देश्यों को स्पष्ट किया गया है— "औद्योगीकरण, अनिवार्य अवसंरचनात्मक सुविधाओं का विकास और शहरीकरण के लिए.....प्रभावित होने जा रहे कुटुंबों को कम से कम बाधा पहुंचाये.....न्यायोचित मुआवजा और समुचित पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन....
.....प्रभावित व्यक्तियों को विकास का भागीदार बनाने और उनकी

सामाजिक—आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु.....।” भूमि—अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन अधिनियम 2011 को अधिनियमित करने हेतु प्रस्तुत किया गया। यदि हम मंत्री द्वारा भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 के निरस्त करने के पीछे दिये गये तर्कों तथा नये प्रस्तावित अधिनियम के उद्देश्यों का विश्लेषण करें तो कुछ बातें एकदम स्पष्ट हो जाती हैं:-

- औद्योगीकरण, विकास की एकमात्र अनिवार्य शर्त है। इसीलिए कृषि या ग्रामीण जीवन का जिक्र करना भी जरूरी नहीं समझा गया। कृषि, वन, जल आधारित भारतीय समाज की लोक व्यवस्थाओं के लिए एक शब्द लिखना भी आवश्यक नहीं माना गया।

संभवतया यह इसलिए किया गया कि खाद्यान्न संकट से निपटने के लिए ‘भोजन का अधिकार अधिनियम’ बनने की प्रक्रिया में है और आगे चलकर इसे ‘कैश ट्रांसफर’ की योजना से जोड़कर (जैसा कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के संदर्भ में दिल्ली जैसे शहरों के कुछ इलाकों में लागू भी कर दिया गया है) देश के निर्धन उपभोक्ताओं (नागरिकों को नहीं) को खाद्यान्न आपूर्ति के व्यापार से जुड़ी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के माध्यम से खाद्यान्न खरीदने का मौलिक अधिकार (?) उपलब्ध करा दिया जायेगा। आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा अमरीका मूल की यह कम्पनियां इस कार्य को वैश्विक पैमाने पर विस्तार देने को आतुर भी हैं। ऐसा होना इन कम्पनियों का अधिकार भी बनता है; क्योंकि दुनिया के अधिकांश शासकवर्गों की तरह हमारे शासक वर्गों ने भी ‘खुले व्यापार’ के समझौते पर हस्ताक्षर कर रखे हैं।

- दूसरा मुख्य सरोकार शहरीकरण का विस्तार है। निश्चित तौर पर यह विस्तार ज्यादा से ज्यादा जमीनों की मांग करेगा। शहरीकरण का विस्तार किये बगैर ग्रामीण भारत का विनाश करने में कुछ विलंब हो सकता है और यह विलंब ‘पूँजी केन्द्रित’ विकास की अवधारणा के लाभार्थियों के लाभ अर्जन के लिए नुकसान दायक होगा। अतएव सारी बाधाओं को दूर करके चमचमाते शहरों, बाजारों, होटलों, माल्स, फ्लाईओवर्स, हवाईअड्डों, हाइवेज को वरीयता में रखना ही होगा।
- तीसरी बात जो कही जा रही है वह अधिसंरचनाओं की है। निश्चित तौर पर यह अधिसंरचनायें भी इसी दिशा में आगे बढ़ने के इरादे से खड़ी की जायेंगी। इनका व्यापक आबादी के हित से कितना लेना—देना होगा— यह

तो आगे आने वाला समय ही बतायेगा।

- प्राइवेट भूमि और सम्पत्ति के अर्जन में मौजूद खामियों को दूर करके सरकारी अधिकारों में और बढ़ोत्तरी जिससे भूमि अर्जन सहजता से किया जा सके।
- व्यक्तियों, कम्पनियों, कारपोरेट्स तथा अन्य औद्योगिक घरानों को सीधे तौर पर, 'विक्रेता-क्रेता के बीच में राज्य की भूमिका की कोई जरूरत नहीं' की समझ पर अमल करते हुए, भू-स्वामियों से जमीन खरीदने का अधिकार।
- भूमि उपयोग के रूपांतरण के अवरोधों की समाप्ति।
- सरकारी हस्तक्षेप के नाते किसानों को मिलने वाली मुआवजा राशि के कम होने पर चिंता व्यक्त करते हुए अपरोक्ष रूप से यह संदेश दिया गया है कि प्राइवेट क्रेता सरकार की तुलना में भू-स्वामियों के ज्यादा हितैषी हैं। यह समझ भू-स्वामियों तथा प्राइवेट क्रेताओं के बीच सौदेबाजी को प्रोत्साहित करने की तरफ इशारा करती है। यह छिपा तथ्य नहीं है कि इस तरह की सौदेबाजी में अन्ततः मजबूत पक्ष ही लाभार्थी होता रहा है।
- आगे चलकर भू-स्वामियों के लिए न्यायोचित मुआवजा, पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन तथा विकास में सहभागी बनाने की चर्चा भी की गयी है और विस्थापित होने वालों के सामाजिक-आर्थिक स्तर को उन्नत करने की भी बात रखी गयी है। जो इस बात की भूमिका के तौर पर है कि विस्थापन के बावजूद भी तरक्की संभव है या यों कहें कि भूमि-वन-खनिजों से मोह विकास में बाधक है, अतएव इनसे दूर होओ और विकास का अमृत चखो।

सार्वजनिक उद्देश्य और सार्वजनिक हित:—

भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 जब मूल रूप में लागू किया गया था तब यह स्पष्ट किया गया था कि इस कानून के अनुसार जमीन का अधिग्रहण अनिवार्यतः सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए होना चाहिए, हालांकि इसमें सार्वजनिक उद्देश्यों को परिभाषित नहीं किया गया था। इस अधिनियम का इतिहास बताता है कि इसका उदय निजी जमीनों के अधिग्रहण और क्रमशः सार्वजनिक सुविधाओं के उदाहरण स्वरूप मकान, स्कूल, अस्पताल, रेल लाइन के निर्माण को लिया जा सकता है के लिए था। [भूमि-अधिग्रहण अधिनियम 1894-3(एफ) i to viii],

भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 में परिभाषित सार्वजनिक उद्देश्य का आशय:

3(एफ) "सार्वजनिक उद्देश्य" में शामिल है :

- (i) गांवों के लिये जमीनें मुहैया कराना या मौजूदा ग्रामीण जमीनों का विस्तार, योजनाबद्ध विकास या सुधार करना;
- (ii) शहरी या ग्रामीण नियोजन के लिये जमीन मुहैया कराना;
- (iii) सरकार की किसी नीति या योजना के कार्यान्वयन के तहत सार्वजनिक अनुदानों से जमीन के विकास के लिये जमीन मुहैया कराना, जिसके पश्चात आगे विकास या योजना को संपन्न करने के लिये उस जमीन को पट्टे पर दिया जा सकता है या बेचा भी जा सकता है;
- (iv) राज्य स्वामित्व या नियंत्रण वाले निगमों के लिये जमीन मुहैया कराना;
- (v) गरीबों या भूमिहीनों या प्राकृतिक आपदा ग्रस्त क्षेत्र में रहने वालों या ऐसे क्षेत्र में रहने वाले व्यक्तियों के लिये आवासीय जमीन मुहैया कराना जो सरकार, स्थानीय प्रशासन या राज्य नियंत्रित निगम आदि की ओर से चलाई गयी किसी योजना के कार्यान्वयन से प्रभावित हुए हैं;
- (vi) शैक्षिक, आवासीय, स्वास्थ्य या झोपड़पट्टी विकास संबंधी किसी भी प्रकार की ऐसी योजना के लिये जमीन मुहैया कराना जो या तो सीधे सरकार की तरफ से या सरकार की अनुमति से स्थानीय प्रशासन द्वारा या फिर सोसायटी पंजीकरण अधिनियम, 1860 के तहत पंजीकृत किसी सोसायटी द्वारा, अथवा राज्य में तत्काल के लिये लागू किये जा रहे किसी कानून या सहकारी सोसायटी के द्वारा कार्यान्वित की जा रही हो;
- (vii) सरकार या सरकार की अनुमति से स्थानीय प्रशासन द्वारा लागू की जा रही किसी भी विकास योजना के लिये जमीन मुहैया कराना;
- (viii) किसी सार्वजनिक कार्यालय हेतु इमारत के निर्माण के लिये जमीन मुहैया कराना, लेकिन इसमें कम्पनियों के लिये भूमि अधिग्रहण शामिल नहीं है।

अधिनियम के तहत दी गयी इस परिभाषा को पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि सार्वजनिक उद्देश्य का आशय विकास कार्यों के लिये राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति करना और गरीबों के कल्याण को सुगम बनाना है। मगर अधिनियम की धारा 6 में सार्वजनिक उद्देश्य की आवश्यकताओं में कम्पनी की आवश्यकताओं को भी शामिल किया गया है। यह धारा भूमि अधिग्रहण के विषय में अधिसूचना की घोषणा से संबंधित है।

ये दो धारायें, जो कि सार्वजनिक उद्देश्य के साथ-साथ स्वयं अधिनियम की भी आधारशिला हैं, अपने आप में परस्पर विरोधी हैं। दरअसल, अधिसूचना के प्रकाशन से भी संबंधित धारा 4, अधिग्रहण के दायरे को निजी जरूरतों की पूर्ति तक भी फैला देती है।

इस भूमि अधिग्रहण अधिनियम (1894) की विषय वस्तु एवं औचित्य सम्बन्धी वक्तव्य के अनुसार **सार्वजनिक कल्याण और आर्थिक विकास के क्षेत्र में सरकार की चिंतायें सर्वोपरि हैं और इसलिए आवश्यकता पड़ने पर भूमि अधिग्रहण अपरिहार्य है।** वक्तव्य में यह भी स्पष्ट किया गया था कि सार्वजनिक कल्याण को बढ़ावा देने के साथ ही साथ उस व्यक्ति के अधिकारों की भी रक्षा की जानी चाहिए जिसकी भूमि उपरोक्त कल्याण कार्यों के लिए की जा रही है, क्योंकि भूमि-अधिग्रहण की स्थिति में वह अपने आजीविका के साधनों से वंचित हो जाता है। **आगे इसी वक्तव्य में यह भी कहा गया था कि निजी उद्यम के लिए भूमि अधिग्रहण को प्राथमिकता के लिहाज से सार्वजनिक उद्देश्य की कोटि में नहीं रखा जा सकता।**

आगे चलकर इस अधिनियम में 1962, 1967 तथा 1984 में प्रमुख संशोधन किये गये और 'निजी मालिकाने की कम्पनियों' को भी सार्वजनिक उद्देश्य की कोटि में शामिल कर लिया गया।

सर्वोच्च न्यायालय के फैसलों, जिसमें सार्वजनिक उद्देश्य को परिभाषित करने के लिए बार-बार कहा गया तथा राज्य द्वारा घोषित किये गये सार्वजनिक उद्देश्य को न्यायालयों ने खारिज किया, का सम्मान करने के बजाय राज्य ने अपनी आर्थिक नीतियों, औद्योगिक नीतियों तथा विकास के एजेण्डे को अहमियत देते हुए इस अधिनियम में समय-समय पर जरूरत के मुताबिक संशोधन किये।

लेकिन जब भूमि अधिग्रहण के मामले में राज्य द्वारा अख्तियार किये गये रवैये पर हम निगाह डालते हैं तो पता चलता है कि इस वक्तव्य की पवित्रता महज एक कागजी जमा-खर्च से ज्यादा कुछ भी नहीं है। अभी जुलाई 2011 तथा अगस्त 2011 में सर्वोच्च न्यायालय एवं इलाहाबाद उच्च न्यायालय के फैसले जो नोएडा के आसपास के गांवों की जमीन तथा जयपुर शहर की भूमि के बारे में हैं इसी तथ्य को रेखांकित करते हैं कि इस कानून का किस तरह दुरुपयोग हुआ है और प्रभावित भू-स्वामियों की कितनी 'सामाजिक-आर्थिक तरक्की' का ध्यान रखा गया है।

प्रस्तावित अधिनियम (2011) में भी 'सार्वजनिक उद्देश्य' को अस्पष्ट रखा गया है 'उद्देश्यों और कारणों के कथन' के बिन्दु 11 में कहा गया है कि '(भूमि) अर्जन में सरकारी हस्तक्षेप केवल रक्षा, कतिपय विकास परियोजनाओं तक सीमित हो'। 'विकास परियोजनाओं' को परिभाषित नहीं किया गया है और न तो 'रक्षा (डिफेंस) उद्देश्यों' को ही परिभाषित किया गया है।

सार्वजनिक उद्देश्यों के निर्धारण में जैसे 'सार्वजनिक हित क्या है?' लोगों की राय जानने या समझने के किसी भी प्रकार के तरीके का इस अधिनियम में प्रावधान नहीं है।

अधिनियम सार्वजनिक उद्देश्य के तहत निम्न प्रयोजनों को रखता है {3 (जेड ए) i से vii} – ऐसी रणनीतिक जरूरतों (हेतु भूमि अर्जन) जिनका सम्बन्ध सुरक्षा से है – नौसेना, सेना, वायु सेना, संघीय सुरक्षा बलों या राष्ट्रीय सुरक्षा या भारत की सुरक्षा या राज्य सुरक्षा या राज्य पुलिस और नागरिकों की सुरक्षा आदि के लिए कोई अन्य महत्वपूर्ण कार्य (3 जेड i)। रेलवे, हाइवेज, हवाई अड्डे-बंदरगाह, ऊर्जा एवं सिंचाई के उद्देश्यों हेतु सरकारी या सार्वजनिक कम्पनियों या कारपोरेट्स (हेतु भूमि अर्जन—(3 जेड ii)। किसी परियोजना प्रभावित लोगों के लिए भूमि अर्जन (3 जेड iii)। योजनाबद्ध विकास या ग्रामीण विकास या शहरी-गांभीण क्षेत्रों में कमजोर वर्ग के लिए आवासीय व्यवस्था या सरकार द्वारा संचालित शैक्षिक-कृषि-स्वास्थ्य केन्द्रों और शोध योजनाओं या संस्थानों की स्थापना के लिए भूमि अर्जन (3 जेड iv)।

इसके अलावा यह अधिनियम यह भी कहता है कि उपरोक्त वर्णित प्रयोजनों के अलावा 'ऐसे प्रयोजनों हेतु भूमि अर्जन सार्वजनिक उद्देश्य की कोटि में आयेगा जिसके द्वारा लोगों का हित होता हो' (3 जेड vi ए), और पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप (पी पी पी) के तहत ऐसी परियोजनायें जो आम लोगों के लिए उत्पादन करती हैं या जन सेवा के लिए समर्पित हैं (3 जेड vi बी) और आगे यह भी व्यवस्था की गयी है कि जनहित में प्राइवेट कम्पनियों को उत्पादन करने या जनहित के लिए सेवा उपलब्ध कराने को भी सार्वजनिक उद्देश्यों की कोटि में रखा जाय (3 जेड vii)।

सार्वजनिक उद्देश्यों को देखने के बाद यह स्पष्ट है कि विश्व व्यापार संगठन की एक प्रमुख शर्त 'निजीकरण को बढ़ावा' की दिशा में तेजी के साथ बढ़ा जायेगा। पी पी पी, निवेशकर्ताओं (देशी-विदेशी) को आमंत्रण तथा निवेश हेतु

उनके लिए तमाम कानूनी बाधाओं को दूर करते हुए सरकार की तरफ से की जाने वाली सिफारिशें इस बात की मुकम्मल बानगी हैं। राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, वित्तमंत्री, वाणिज्य मंत्री के हाल के विदेशी दौरों में प्रत्यक्ष विदेशी निवेश को विशेषतौर पर प्रोत्साहन और भारत को निवेश के लिए सर्वोत्तम (बड़ी बाजार, उपभोक्ताओं की व्यापक आबादी, सस्ता श्रम तथा सस्ते कच्चे माल और सरकार का पूर्णतया समर्पित सहयोग, शिथिल पर्यावरण एवं भूमि सम्बन्धी कानून तथा राजनैतिक स्थिरता आदि) देश सिद्ध करने की कवायद इस दिशा में उठाये जाने वाले कदम हैं।

यह विधेयक भारत की उस आर्थिक नीति को सहज बनाने की प्रक्रिया का एक हिस्सा है जिसके तहत भारत की अर्थव्यवस्था का निर्धारण अन्तर्राष्ट्रीय वित्त संस्थानों, कारपोरेट, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों तथा अमरीकी, यूरोपीय, जापानी हितों के द्वारा हो रहा है तथा इसका नियोजन, संचालन, नियंत्रण वैश्विक राजनैतिक अर्थव्यवस्था के अधीन है।

अधिनियम यह भी घोषित करता है कि निम्नलिखित अधिनियमों के अधिकार क्षेत्रों पर 'भूमि अर्जन, पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन विधेयक 2011' लागू नहीं होगा— (अधिनियम की धारा 98 एवं अधिनियम की चौथी अनुसूची) अर्थात् इन अधिनियमों के तहत भी भूमि अधिग्रहण जारी रहेगा।

प्रस्तावित अधिनियम 2011 की चौथी अनुसूची

भूमि अर्जन और पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन को विनियमित करने वाले विधानों की सूची:—

1. प्राचीन स्मारक तथा पुरातत्ववीय स्थल और अवशेष अधिनियम, 1958 (1958 का 24)।
2. परमाणु ऊर्जा अधिनियम, 1962 (1962 का 33)।
3. छावनी अधिनियम, 2006 (246 का 41)।
4. दामोदर घाटी निगम अधिनियम, 1948 (1948 का 14)।
5. भारतीय ट्राम अधिनियम, 1886 (1886 का 11)।
6. भूमि अर्जन खान अधिनियम, 1885 (1885 का 18)।
7. भूमिगत रेल (संकर्म सन्निमार्ण) अधिनियम, 1978 (1978 का 33)।
8. राष्ट्रीय राजमार्ग अधिनियम, 1956 (1956 का 48)
9. पेट्रोलियम और खनिज पाइपलाइन (भूमि में उपयोग के अधिकार का

अर्जन) अधिनियम, 1962 (1962 का 50)।

10. स्थावर संपत्ति अधिग्रहण और अर्जन अधिनियम, 1952 (1952 का 30)।
11. विस्थापित व्यक्तियों का पुनर्व्यवस्थापन (भूमि अर्जन) अधिनियम, 1948 (1948 का 60)।
12. विशेष आर्थिक जोन अधिनियम (सेज), 2005 (2005 का 28)।
13. कोयला धारक क्षेत्र अर्जन और विकास अधिनियम, 1957 (1957 का 20)।
14. विद्युत अधिनियम, 2003 (2003 का 36)।
15. रेल अधिनियम, 1989 (1989 का 24)।
16. रक्षा संकर्म अधिनियम, 1903 (1903 का 7)।

अब सवाल यह पैदा होता है कि फिर कौन सी भूमि, खनिज, जलस्रोत, पहाड़ वन बचते हैं जिनका अधिग्रहण नहीं किया जा सकता। भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 (संशोधनों के साथ) में यह सूची छोटी थी परंतु मौजूदा अर्थव्यवस्था के लिए यह सूची काफी बड़ी कर ली गयी है और सरकार को इस सूची को आवश्यकतानुसार छोटी-बड़ी करने का अधिकार भी प्राप्त होगा (धारा-99 (I)।

इस अधिनियम में यह भी प्रावधान (धारा 106 (I)) है कि इस अधिनियम के लागू होने के बाद 2 वर्ष की समय सीमा के अंदर यदि किसी प्रकार की दिक्कत आती है (अधिनियम के प्रावधानों या नियमों के कार्यान्वयन में) तो केन्द्रीय सरकार इसमें रद्दोबदल कर सकती है। इस तरह के बदलाव के लिए इसे संसद के समक्ष रखने की बात तो की गयी है परंतु संसद में प्रस्तुत करने की समय सीमा पर अधिनियम खामोश है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रस्तावित विधेयक भी उसी परम्परा को न केवल आगे बढ़ायेगा बल्कि और भी ज्यादा किसान विरोधी बनायेगा, जिस परंपरा के तहत यह देखने में आया है कि 'सरकार द्वारा की गयी घोषणाएँ, योजनाएँ सार्वजनिक हित की कोटि में आती हैं'।

क्रेता-विक्रेता की सहमति से भूमि का हस्तांतरण निजी कम्पनियों के लिए विधिमान्य:-

एक तरफ यह अधिनियम भूमि अधिग्रहण के सरकारी अधिकार क्षेत्र का विस्तार करते हुए भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया को सहज और सरल करता है और दूसरी तरफ यह सुनिश्चित करता है कि 'भूमि के उपभोग के रूपांतरण' की

बाधाओं को दूर करते हुए 'क्रेता (कम्पनी, कारपोरेट) तथा 'विक्रेता' (भू-स्वामी) के मध्य सीधी खरीद फरोख्त में सरकार का कोई सीधा हस्तक्षेप न हो, वह केवल यह देखेगी कि अधिनियम के प्रावधानों (पुनर्वासन-पुनर्व्यवस्थापन) का पालन हो रहा है या नहीं, जहां यह लागू होता है।

हालांकि खरीद-फरोख्त की अधिकतम सीमा पर खामोश रहकर और न्यूनतम सीमा (100 एकड़ (ग्रामीण) एवं 50 एकड़ (शहरी)) तक पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन से निजी कारोबारियों को छूट देकर यह अधिनियम 'पूँजी केन्द्रित लोकतंत्र' का रास्ता और साफ करते हुए विश्व व्यापार संगठन की एक और शर्त, जो नवउदारवाद के मूलभूत सिद्धांतों में एक है, राज्य का हस्तक्षेप (बाजार, व्यापार, वाणिज्य में) में न्यूनतम या एकदम न हो, को पूरा करता दिखता है।

इस खरीद फरोख्त के मामले में 'कृषि-भूमि' के उपभोग के रूपांतरण की मनाही की कोई बाध्यता नहीं है। वहीं यह भी देखने की बात है कि इस खरीद-फरोख्त की प्रक्रिया में राज्य के शामिल न होने का तात्पर्य होगा किसानों को कम्पनियों-कारोबारियों तथा कारपोरेट के भरोसे छोड़ देना। इसके पिछले अनुभव यह बताते हैं कि 'कारपोरेट जनित हिंसा'- धोखाधड़ी आदि बढ़ेगी तथा कम्पनियों को साम-दाम-दण्ड-भेद का रास्ता अपनाने का भरपूर मौका मिलेगा। ऐसी हालत में अलग रहते हुए भी सरकार कम्पनियों के हित के सापेक्ष भूमिका अदा कर रही होगी।

भूमि अधिग्रहण और पुनर्वासन तथा पुनर्व्यवस्थापन और मुआवजे का प्रश्न:

- सरकार द्वारा अर्जित की गयी भूमि के मुआवजे तथा पुनर्वासन और पुनर्व्यवस्थापन की जिम्मेदारी सरकार की होगी जिसे अनुच्छेद-2 में प्रदर्शित किया गया है (धारा-30, 2 ए से के तक)। इसमें मकान, पशु आदि की क्षतिपूर्ति का भी प्रावधान तथा मुआवजे की दरों का वर्णन है। परंतु ध्यान देने वाली बात यह है कि अधिग्रहीत भूमि का मुआवजा बाजार दर के ही आधार पर तय होगा। बाजार दर तय करने में सरकार से ज्यादा बाजार की ताकतें सक्रिय हैं। अतएव इस बात की संभावना लगातार बनी रहेगी कि बाजार दर को बाजार की ताकतें अपने हित में घटा-बढ़ा सकती हैं। जिन क्षेत्रों में सालों से भूमि की खरीद-फरोख्त नहीं हुई है वहां किसी पुरानी -सेल डीड' को आधार बनाकर जमीन का दाम तय करने के कारनामे देश के तमाम हिस्सों

में होते रहे हैं और इसी तरह का प्रावधान इस अधिनियम में भी है।

- किसी प्राइवेट कम्पनी द्वारा यदि इस अधिनियम की धारा 42 के अन्तर्गत आपसी तालमेल करके ग्रामीण क्षेत्रों में 100 एकड़ और शहरी क्षेत्रों में 50 एकड़ से ज्यादा जमीन खरीदी जाती है तो इस अधिनियम के तहत पुनर्वास एवं पुनर्व्यवस्थापन के नियम लागू होंगे। (धारा-2, 2ए)।
- यदि कोई प्राइवेट कम्पनी सरकार से किसी क्षेत्र विशेष में सार्वजनिक हित के उद्देश्य हेतु चिन्हित की गयी भूमि के अधिग्रहण का अनुरोध करती है तथा यदि कम्पनी सरकार से सार्वजनिक हित के लिए अपने द्वारा खरीदी गयी भूमि के अलावा शेष भूमि के अधिग्रहण का निवेदन करती है तब पूरी की पूरी भूमि पर भी पुनर्वासन एवं पुनर्व्यवस्थापन के प्रावधान लागू होंगे।
- लेकिन यदि ग्रामीण क्षेत्रों में 100 एकड़ तथा शहरी क्षेत्रों 50 एकड़ तक जमीनें कम्पनियों द्वारा खरीदी जाती हैं तो पुनर्वास एवं पुनर्व्यवस्थापन सम्बन्धी प्रावधान लागू नहीं होंगे।

इसके कई अर्थ निकलते हैं—

- प्राइवेट कम्पनियां 100 एकड़ और 50 एकड़ की सीमा का ध्यान रखते हुए अलग-अलग नामों से जमीनें खरीदें और आगे चलकर किसी एक ही नाम पर बेच सकती हैं। यह कार्य कम्पनियों का एक समूह मिल कर बखूबी कर सकता है। इस मामले में कानून में स्पष्टता नहीं है कि यदि एक ही गांव की कुल जमीन को 10 या 15 कम्पनियां मिलकर 100-100 एकड़ के हिसाब से खरीद लें तो ऐसी हालत में पुनर्वास एवं पुनर्व्यवस्थापन की जिम्मेदारी किसकी होगी?
- किसी परियोजना के लिए यदि कोई कम्पनी जमीन खरीद लेती है और शेष भूमि के लिए सरकार से अधिग्रहण के लिए कहती है तो उसे पूरी जमीन के प्रभावितों की पुनर्वास एवं पुनर्व्यवस्थापन की जिम्मेदारी निभानी होगी। अतएव घाटे का रास्ता न अपनाकर कम्पनियां साम, दाम, दण्ड, भेद का इस्तेमाल करेंगी और शेष जमीन भी खरीद पाने की जुगत बैठायेगी।
- प्राइवेट कम्पनियों की खरीद-फरोख्त में कृषि भूमि (बहु-फसली कृषि भूमि) को वर्जित नहीं किया गया है।
- सामूहिक भूमि, वन, जल स्रोतों, चारागाह आदि का क्या होगा यदि पूरा का पूरा गांव अधिग्रहीत कर लिया जाता है।
- विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या प्राकृतिक वरदानों की क्षतिपूर्ति संभव है?

क्या कृषि, वन एवं जल आधारित लोक अर्थव्यवस्थाओं का कोई विकल्प इस विधेयक को प्रस्तावित करने वाले शासक वर्ग के पास है?

- निजी कम्पनियों को छूट देकर क्या सार्वजनिक क्षेत्र को समाप्त करने की योजना है? या सोसाइटीज़ एक्ट 1860 के तहत सरकार अपनी कम्पनियों का पंजीयन कराके पुनर्वास एवं पुनर्व्यवस्थापन की अपनी जिम्मेदारियों से बचने का रास्ता ढूँढ लेगी।

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि जिस पुनर्वासन या पुनर्व्यवस्थापन का ढिंढोरा पीटा जा रहा है वह कितने मामलों में लागू होगा? (धारा-98) 100 तथा 50 एकड़ (क्रमशः ग्रामीण एवं शहरी) तक की खरीद-फरोख्त, अनुच्छेद-4 में सूचीबद्ध तमाम ऐसे कानून जिनके तहत भी भूमि अधिग्रहीत की जा सकती है आदि मामलों में यह लागू नहीं होगा। सरकार द्वारा अधिग्रहीत भूमि (स्वयं अपनी योजना के लिए या निजी कम्पनियों की शेष भूमि की पूर्ति के लिए) पर ही यह लागू होगा। अनुमानतः यह रूपांतरित और हस्तांतरित भूमि का 1 या 2 फीसदी ही होगा; क्योंकि सरकार लगातार निजी क्षेत्र, निवेशकर्ताओं को आमंत्रित कर रही है।

भूमि अर्जन से जुड़े सवाल:

- भूमि अर्जन के मामले में उद्देश्य की घोषणा या उद्देश्य परिवर्तन न करने के बारे में सख्त प्रावधान नहीं हैं, बल्कि छूट ही दी गयी है।
- सरकार द्वारा सार्वजनिक हित के नाम पर अधिग्रहीत भूमि को निजी कम्पनियों या कारपोरेट्स को देने की मनाही नहीं है। ऐसी स्थिति में अधिनियम केवल यह कहता है कि यदि अधिग्रहीत भूमि किसी और को हस्तांतरित की जाती है तो इसके मूल भू-स्वामियों को 20 प्रतिशत अतिरिक्त भुगतान किया जायेगा। (धारा 96)। यहां पर भी समयसीमा का निर्धारण नहीं है।

भूमि बैंक का मामला:-

यदि इस अधिनियम के तहत भूमि का अधिग्रहण किया जाता है तथा अधिकतम 10 वर्षों तक इसका उपयोग नहीं किया जाता तो ऐसी भूमि सम्बन्धित सरकार के 'भूमि-बैंक' का हिस्सा हो जायेगी (धारा-95)।

इस भूमि को मूल भू-स्वामियों को वापस करने का न तो प्रावधान है और न ही अधिग्रहीत भूमि का उपयोग न करने वालों के लिए किसी प्रकार के दण्ड का प्रावधान है।

इसका तात्पर्य यह है कि भूमि का अधिग्रहण करके लोगों को विस्थापित

करना तथा उस भूमि का उपयोग न करना कोई अपराध नहीं है।

यदि अधिग्रहीत भूमि पर इतनी शिथिलता का मौका है तो निजी क्रेताओं के पास जमीन खरीद कर उसे बाजार चढ़ने तक इंतजार करने का मौका भी उपलब्ध है, और यह प्रस्तावित अधिनियम ऐसा ही करता दिख रहा है। और यही भूमि निजी कम्पनियों या क्रेता सरकार को बढ़े हुए दाम पर सार्वजनिक उद्देश्यों के लिए बेच भी सकते हैं।

निजी कम्पनियों द्वारा खरीदी गयी भूमि चाहे वह कम हो या ज्यादा – उपयोग न करने की स्थिति में सरकारी भूमि बैंक का हिस्सा नहीं बनेगी, उसका मालिकाना कम्पनी के ही पास रहेगा चाहे उसका उपयोग हो रहा हो या नहीं। यह अधिनियम बड़ी सफाई से निजी कम्पनी/पूँजी के हित चिंतकों की समझ को दर्शाता है।

भूमि अर्जन की केन्द्रीकृत व्यवस्था : न्यायिक प्रक्रिया पहुँच से बाहर:—

सामाजिक प्रभाव आकलन, जन सुनवाई तथा सार्वजनिक उद्देश्य के निर्धारण तथा शिकायतों की सुनवाई आदि की बात इस अधिनियम में की गयी है।

अधिनियम की धारा 45 के अन्तर्गत भूमि अर्जन हेतु 'द लैण्ड एक्जुजेशन रिहैबिलिटेशन एण्ड रिसेटिलमेण्ट अथॉर्टी' का प्रावधान किया गया है, इसके साथ ही जिले के कलक्टर एवं सरकार द्वारा कमिश्नर स्तर का एक अधिकारी जो 'कमिश्नर-रिहैबिलिटेशन एण्ड रिसेटिलमेण्ट' (धारा-40) कहलायेगा, के द्वारा भूमि अर्जन तथा पुनर्वास आदि की व्यवस्था की जायेगी। इन अधिकारियों को भू-अर्जन, क्षतिपूर्ति, मुआवजे की दर का निर्धारण तथा पुनर्वास एवं पुनर्व्यवस्थापन आदि के बारे में अंतिम निर्णय लेने का अधिकार होगा। इस प्राधिकरण को सिविल कोर्ट के अधिकार भी होंगे (धारा-54)।

इस अधिनियम की धारा-57 के तहत सिविल कोर्ट के हस्तक्षेप को भी सीमित कर दिया गया है और कहा गया है कि भूमि अधिग्रहण पुनर्वास एवं पुनर्व्यवस्थापन प्राधिकरण को जिन मामलों में निर्णय लेने का अधिकार है उसमें निचली अदालतें हस्तक्षेप नहीं कर सकतीं। इस संदर्भ में उच्च न्यायालय या सर्वोच्च न्यायालय को ही हस्तक्षेप का अधिकार होगा।

इसका तात्पर्य यह है कि पूरी की पूरी भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया तथा पुनर्वास एवं पुनर्व्यवस्थापन अफसरशाही के केन्द्रीभूत नियंत्रण में होगा और हाईकोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट तक पहुँचने की स्थिति में कम ही पीड़ित लोग होंगे, अतएव वे न्यायिक प्रक्रिया की पहुँच से अपने आप बाहर हो जायेंगे।

भूमि अर्जन के संदर्भ में राज्य हस्तक्षेप को तीन श्रेणियों में रखा जा सकता

है। राज्य के कार्य के लिए राज्य द्वारा भू-अर्जन, निजी क्षेत्र को देने के लिए राज्य द्वारा भू-अर्जन तथा अविलम्ब भूमि अर्जन अपने लिए या निजी क्षेत्र के लिए। पहली श्रेणी में 1894 के कानून की पूरी ताकतें कायम रखी गयी हैं। इस श्रेणी के भू-अर्जन पर लोगों की कोई सुनवायी नहीं होगी। विधेयक में प्रावधान है कि प्रभावित आबादी के 80 प्रतिशत की सहमति अनिवार्य होगी। एक बार 80 प्रतिशत की सहमति तैयार हो जाने पर बाकी 20 प्रतिशत लोगों की भूमि का बलपूर्वक अर्जन सुनिश्चित किया गया है।

आपातकालीन भू-अर्जन:-

प्रभावितों की संकुचित परिभाषा-

प्रस्तावित अधिनियम की धारा-3 में प्रभावित क्षेत्र तथा प्रभावितों की परिभाषा बहुत ही संकुचित है। प्रभावित क्षेत्र के बारे में अधिनियम कहता है- 'वह क्षेत्र जो सरकार द्वारा अधिग्रहण हेतु नोटिफाई किया गया हो'। यह परिभाषा न तो व्यवहारिक है और न वैज्ञानिक। उदाहरण के लिए यदि सीमेण्ट कारखाना लगाने हेतु 10 हजार हेक्टेअर में बसे क्षेत्र को अधिग्रहण हेतु नोटिफाई किया जाय तो इसका मतलब यह हुआ कि सीमेण्ट कारखाने के बगल के लिए नोटिफाई किये गये भू-क्षेत्र के गांव, आबादी, खेती, बाग, जंगली जानवर आदि प्रभावित क्षेत्र की कोटि में नहीं आयेंगे। सीमेण्ट कारखाने के लिए जो भूजल का दोहन किया जायेगा उसका प्रभाव क्या उन्हीं 10 हजार हेक्टेअर के ही क्षेत्र पर पड़ेगा? एक दूसरे उदाहरण से समझा जा सकता है। उड़ीसा के नियामगिरि की बाक्साइड के खनन (जिसके लिए वेदांत कम्पनी प्रयासरत है) से इस अधिनियम के मुताबिक उन्हीं गांवों को प्रभावित क्षेत्र माना जायेगा जो गांव इस पहाड़ के ऊपर बसे हैं। परंतु इस पहाड़ से निकलने वाली नदी तथा झरनों के पानी का इस्तेमाल करने वाले दसियों मील दूर बसे गांवों को प्रभावित क्षेत्र नहीं माना जायेगा।

इसी प्रकार अधिनियम में प्रभावित कुटुंब उन्हें माना गया है जिनकी जमीनों, आवासों आदि का अधिग्रहण किया गया है। परंतु इस अधिग्रहण से बगल के खेत या बगल में बसी आबादी को प्रभावित नहीं माना गया है। उदाहरण के लिए पेप्सी कम्पनी एक एकड़ खेत का अधिग्रहण करके वहां से लाखों गैलन पानी का दोहन करे तो इस अधिनियम की परिभाषा के मुताबिक वह लोग प्रभावित नहीं माने जायेंगे जिनके खेतों का भू-जल समाप्त हो रहा है या जिनके घरों में धूल, सीमेण्ट की परत जम रही है या जल तथा वायु के प्रदूषण से जो लोग ग्रसित हो रहे हैं।

इस तरह परोक्ष रूप से प्रभावित क्षेत्रों तथा कुटुंबों को ही प्रभावितों की कोटि में रखा गया है परंतु अपरोक्ष रूप से प्रभावित क्षेत्रों तथा कुटुंबों को प्रभावितों

की कोटि में नहीं रखा गया है।

अतएव जब लोगों की 80 प्रतिशत सहमति लेने की बात की जाती है तो परोक्ष और अपरोक्ष रूप से प्रभावित लोगों—कुटुंबों तथा क्षेत्रों के लोगों की राय की बात की जानी चाहिए।

महत्वपूर्ण यह है कि—

यदि भूमि अधिग्रहण के सवाल पर लोगों की सहमति लेने की बात अधिनियम में कही जा रही है तो इससे किसी को आपत्ति नहीं हो सकती लेकिन गंभीर बात यह है कि जिन योजनाओं, परियोजनाओं (सरकारी/निजी, पी.पी.पी., बी.यू.टी., देशी/विदेशी) के लिए भूमि, जिस पर जल, वन तथा खनिज भी हैं; का अधिग्रहण किया जा रहा है सीधे तौर पर पूरे देश की खाद्यान्न स्थितियों, जल की उपलब्धता, पर्यावरण, जीविका, संस्कृति और लोगों के अस्तित्व को प्रभावित करते जा रहे हैं। इसी नाते इन स्थितियों पर एक श्वेत-पत्र की मांग की जाती रही है, परंतु सत्ता ने इसे कभी पूरा नहीं किया। यह मामला गंभीर है, इस पूरे अधिनियम तथा भूमि अधिग्रहण के बारे में ग्राम सभाओं के माध्यम से पूरे देश में जनमत संग्रह कराके 80 फीसदी लोगों की राय मिलने पर ही इस अधिनियम और भूमि अधिग्रहण को लागू किया जाना चाहिए। यह मसझ से परे है कि देशवासियों को —‘सार्वजनिक हित’ तथा ‘वांछित अधिग्रहण’ तय करने का अधिकार देने में सत्ता क्यों कतराती रही है जबकि यही सत्ता संसद और विधानसभायें निर्वाचित करने का अधिकार नागरिकों को देने में नहीं कतराती; फिर भी ऐसे प्रकरण पर जिसने करोड़ों लोगों को विस्थापित किया है जनमत संग्रह क्यों नहीं कराया जाना चाहिए?

भूमि अर्जन की प्रक्रिया में बाधक तत्व दण्ड के पात्र होंगे:—

प्रस्तावित अधिनियम की धारा-59 का इस्तेमाल ऐसे लोगों को दण्डित करने के लिए किया जा सकता है जो कि भूमि-अधिग्रहण में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि ‘गलत तथ्य, जानकारी या सूचना देने’ के आरोप की आड़ में असहमति के स्वयं को कुचला जायेगा। यह तो नियमों की घोषणा के बाद पता चलेगा कि यह अपराध जमानती होगा या गैर जमानती, आर्थिक दण्ड या सजा कितनी होगी और यह देशद्रोह की कोटि में होगा या नहीं?

जन सुनवाई, मुआवजे का आकलन तथा पुनर्वास में जन भागेदारी नहीं होगी:—

जन सुनवाइयों की फर्ज अदायगी, जन सुनवाइयों पर पुलिस तथा कारपोरेट

जनित हिंसक हमले आदि से हिमाचल से लेकर आन्ध्र प्रदेश तक के जनसंघर्ष वाकिफ हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत निर्णय लेने की प्रक्रिया में किसी भी स्तर पर प्रभावित होने जा रहे लोगों के प्रतिनिधियों तथा असहमति रखने वाले जनसंघर्षों को शामिल नहीं किया जायेगा। सारे निर्णय सरकारी अधिकारी और सरकार द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ ही लेंगे। पंचायती राज अधिनियम, पेसा जैसे कानूनों द्वारा गठित स्थानीय स्वशासन को भी इस प्रक्रिया से बाहर रखा जायेगा।

कृषि भूमि एवं खाद्यान्न संकट की चिंता : कितनी सच?

प्रस्तावित अधिनियम के अध्याय-3 में धारा 10 (1 से 4) तक के द्वारा 'खाद्य सुरक्षा की रक्षा' के लिए विशेष प्रावधान किये जाने का दावा किया गया है। धारा 10 (1) कहती है कि 'सिंचित, बहु फसली भूमि' का अर्जन नहीं किया जायेगा परंतु धारा 10 (2) कहती है कि 'अपवाद स्वरूप ऐसी भूमि का अंतिम विकल्प के रूप में' अर्जन किया जा सकता है लेकिन पूरे जिले में इस तरह की उपलब्ध भूमि का 5 प्रतिशत से अधिक भाग इस तरह के अर्जन के लिए लिया नहीं जा सकता। आगे कहा गया है कि धारा 10 (2) के तहत अर्जित बहुफसली सिंचित भूमि के बराबर बंजर भूमि को खेती योग्य विकसित किया जायेगा (10(3))। धारा 10 के ही भाग 4 में यह भी प्रावधान किया गया है कि यदि किसी ऐसे जिले में भूमि अर्जन किया जाता है जिस जिले की कुल भूमि के 50 प्रतिशत से कम हिस्से में कृषि योग्य भूमि है तथा बुआई की जाती है तो सभी परियोजनाओं को मिलाकर उस जिले की शुद्ध बुआई क्षेत्र के 10 प्रतिशत से अधिक भूमि अर्जित नहीं की जा सकती।

इसका तात्पर्य यह है कि एक तरफ तो सिंचित बहुफसली फसल वाली कृषि भूमि का एवं अन्य सामान्य कोटि की कृषि भूमि का भी अधिग्रहण किया जा सकता है लेकिन यह प्रावधान भूमि के निजी खरीद-फरोख्त (भूस्वामी एवं निजी कंपनियों/कारपोरेट के बीच) पर लागू नहीं होंगे। तीसरी समस्या यह होगी कि बहुफसली कृषि भूमि एवं अन्य कृषि भूमि के निर्धारण की प्रक्रिया क्या होगी? अभी 'गंगा एक्सप्रेस-वे' के लिए अधिग्रहीत की जाने वाली जमीन, जो सबसे उपजाऊ मानी जाती है के संदर्भ में? एक जिले के जिलाधिकारी ने यह लिखकर देने में जरा भी झिझक नहीं दिखलाई थी कि यह भूमि गैर उपजाऊ, ऊसर तथा बंजर है।

अधिनियम में कृषि भूमि की न्यूनतम सीमा तय करने के प्रति कोई उत्सुकता नहीं दिखायी गयी है। इसके अलावा वन भूमि, पहाड़ी भूमि, जल स्रोतों के निकट की भूमि जो निश्चित तौर पर बहुफसली नहीं होतीं परंतु इनके निकट बसे लोगों की आजीविका का आधार होती हैं, को भूमि अर्जन के लिए वर्जित

कोटि में नहीं रखा गया है।

भूमि के बदले भूमि—

भूमि के बदले भूमि उपलब्ध कराने का प्रावधान केवल ऐसी स्थिति में होगा जब भूमि का अधिग्रहण किसी सिंचाई परियोजना के लिए किया जा रहा है (दूसरा अनुच्छेद, बिन्दु-2).

अनुसूचित जन-जातियों तथा पांचवीं-छठी अनुसूची के क्षेत्रों के बारे में विशेष प्रावधान—

प्रस्तावित विधेयक के अनुच्छेद 2 में इसका संक्षेप में जिक्र किया गया है। यह प्रावधान है कि—

- अर्जित की गयी ऐसी भूमि जिसमें अनुसूचित जाति या अनुसूचित जनजातियों के लोग बसे हैं, उनकी अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए पांच वर्ष की अवधि के अंदर गैर वन भूमि पर पर्याप्त ईंधन, चारा और गैर काष्ठ वनोत्पाद संसाधनों के विकास का कार्य किया जायेगा।
- जन जातीय क्षेत्रों में लागू विशेष कानूनों का पालन करते हुए भूमि अर्जन की प्रक्रिया आगे बढ़ायी जायेगी।
- विस्थापित होने वाले जन जाति के सदस्यों को एक ही ब्लॉक में सघन रूप से बसाया जायेगा, जिससे वे अपनी जातीय, भाषागत और सांस्कृतिक पहचान बनाये रख सकें। इन्हें 25 प्रतिशत अतिरिक्त भूमि दी जायेगी।
- विस्थापित जन जातियों के लोग यदि 5वीं अनुसूची के क्षेत्र से बाहर बसाये जाते हैं तो भी उन्हें 5वीं अनुसूची की सुविधायें मिलेंगी।

लेकिन यह प्रावधान 5वीं अनुसूची की भावनाओं के विपरीत है। छोटानागपुर टेनेन्सी एक्ट तथा संताल परगना टेनेन्सी एक्ट किसी बाहरी और गैर आदिवासी को भूमि के हस्तांतरण की अनुमति नहीं देता फिर इस क्षेत्र में भूमि अर्जन अवैध तरह से तथा बलात ही किया जा सकता है। पेसा कानून को यदि माना जाय तथा ग्राम सभायें भूमि अर्जन, वन, जल, पहाड़, खनिज के अर्जन को ना कर दें तो ऐसी स्थिति में क्या होगा? यह प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि भूमि अर्जन के निशाने पर ज्यादातर वही क्षेत्र हैं जो 5वीं अनुसूची, पेसा कानून, सी.एन.टी. एक्ट एवं एस. पी.टी. एक्ट द्वारा नियंत्रित तथा संचालित हैं। वन, जल, पहाड़, पशु के बगैर आदिवासी अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। अतएव उन्हें इनसे वंचित कर देना उनके अस्तित्व को समाप्त कर देना जैसा ही होगा, इसकी क्षतिपूर्ति तथा पुनर्वासन एवं पुनर्व्यवस्थापन संभव नहीं है।

‘पूँजी की हिफाजत’ के लिए ‘ज्यादा से ज्यादा भूमि का मालिकाना

मजबूरी है ‘पूँजीपति वर्ग’ की और ‘राष्ट्र-राज्य’ कटिबद्ध है
इस संकट से उन्हें उबारने के लिए

संयुक्त राष्ट्र संघ की जनरल असेम्बली में 24 सितंबर 2011 को जब देश के विद्वान प्रधानमंत्री (माहिर अर्थशास्त्री) यह कह रहे थे कि ‘अमरीकी, यूरोपीय देशों तथा जापान की डॉवाडोल आर्थिक स्थिति का विकासशील देशों की अर्थव्यवस्थाओं पर बुरा असर पड़ रहा है’ उसी वक्त उसी स्थान पर जी.डी.पी. विशेषज्ञ हमारे वित्तमंत्री विश्व बैंक से अनुरोध कर रहे थे कि ‘अविकसित तथा विकासशील देशों को ज्यादा से ज्यादा कर्ज उपलब्ध कराने के लिए विश्व बैंक ज्यादा से ज्यादा पूँजी की व्यवस्था करे’ और यहां दिल्ली में इन्ही तारीखों में योजना आयोग गरीबी रेखा के निर्धारण के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में 26 रुपये तथा शहरी क्षेत्रों में 32 रुपये प्रतिदिन की आमदनी तय कर रहा था। प्रधानमंत्री यू.एन.ओ. की जनरल असेम्बली में यह भी बोल रहे थे कि ‘उन्होंने अपने देश के लोगों के लिए भोजन समेत तमाम बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में काफी हद तक कामयाबी हासिल की है। साथ ही वे उग्रवाद-आतंकवाद की समस्या के समाधान के लिए विश्व स्तर पर एकजुट पहल की अपील भी कर रहे थे।’

यह सब ऐसे दौर में हो रहा है जब दुनिया के तमाम अर्थ विज्ञानी इस बात का भी संकेत दे रहे हैं कि दुनिया एक बार फिर से आर्थिक मंदी की दौर की ओर बढ़ी तेजी से बढ़ रही है। संयुक्त राज्य अमरीका की रेटिंग गिरने की घोषणा करते ही पूरी दुनिया में भूचाल आ गया। शेयर-सेंसेक्स, बैंकों के ब्याज सब डॉवाडोल होने लगे। अमरीकी सीनेट में हंगामा खड़ा हो गया। 2008 के आर्थिक भूचाल को बीते अभी ज्यादा दिन नहीं हुए हैं।

अगर इन परिस्थितियों में प्रधानमंत्री, वित्तमंत्री के बयानों तथा योजना आयोग की गरीबी रेखा निर्धारण के मानदण्डों को हम देखें तो एकदम साफ नजर आता है कि इन वस्तुगत परिस्थितियों की हकीकत से जानबूझ कर आंखें बन्द रखी जा रही हैं। जिन अर्थव्यवस्थाओं (अमरीकी-यूरोपीय तथा जापानी- जो वास्तव में एक ही हैं) को आदर्श मानकर डा. मनमोहन सिंह ने वित्तमंत्री के रूप में उदारीकरण-निजीकरण के वैश्वीकरण का रास्ता पकड़ा था और

उसके प्रवक्ता के रूप में पी. चिदंबरम के साथ ख्याति अर्जित करने में कामयाब रहे थे, आज उसकी असलियत दुनिया के सामने है। लंदन के दंगे, यू.एस.ए. में बढ़ती बेरोजगारी, जापान में आर्थिक ठहराव तथा चीन में श्रमिकवर्ग की बदतर हालात इसके हालिया सबूत हैं।

बार-बार 'जादू की छड़ी' का जुमला जब विद्वान प्रधानमंत्री दुहराते हैं तथा गृहमंत्री कारपोरेट्स को जमीन, जंगल, खनिजों पर कब्जा दिलाने के लिए कुछ भी कर गुजरने की घोषणायें करते हैं, राहुल गांधी उड़ीसा में जाकर आदिवासियों के सिपाही होने की घोषणा करते हैं, नरेन्द्र मोदी टाटा को जमीन कुछ घण्टों में उपलब्ध करा देते हैं, मारुति-सुजुकी कम्पनी को जमीन देने के लिए (कम्पनी की ही शर्तों पर) तमिलनाडु, गुजरात और हरियाणा की सरकारें लालायित नजर आती हैं तब यह सब देख सुनकर किसी को भी ऐसा आभास होता है कि या तो हमारी सरकार अपने राष्ट्र-राज्य की संप्रभुता को कहीं गिरवी रखकर काम कर रही है या उसने माल-मुनाफे-पूँजी के हित में अपने नागरिकों की फिकर करना बंद कर दिया है। फिर भूमि-अधिग्रहण के प्रस्तावित अधिनियम में वह लोगों की फिकर करके अपने पथ से क्यों विचलित होकर विधर्मी बनना चाहेगी? और विश्व की आर्थिक व्यवस्था के नियंताओं की कोप-भाजन क्यों बनना चाहेगी?

उदारीकरण-निजीकरण के खगोलीकरण की प्रक्रियाओं की तेज़ी ने मात्रागत तथा गुणात्मक-दोनों स्तरों पर विकास की अवधारणा में बदलाव किये हैं। विकास के मूल लाभार्थियों में जहां एक तरफ व्यापक एकजुटता दिख रही है वहीं पर इनमें मुनाफे, हिस्सेदारी तथा वर्चस्व को लेकर आंतरिक द्वंद भी दिखायी पड़ते रहते हैं। इसके नियंता बड़ी तेज़ी के साथ हिंसक, आक्रामक, अमानवीय और प्रकृति विरोधी हुए हैं- इस मसले पर उनकी प्रतिबद्धता में कोई अंतर नहीं है। मनुष्य का जीवन, सुख, आनंद तथा मानवीय मूल्य-सामूहिकता, भाईचारा, बहनापा, प्रेम, पारस्परिक सम्मान, विभिन्नताओं का सम्मान, असहमतियों को स्थान और पारस्परिक सह-अस्तित्व, शांति, समानता आदि को विकास के एजेण्डे से न केवल बाहर रखा गया है बल्कि काफी हद तक इनको विकास में बाधक भी माना जा रहा है। विकास का अर्थ अनावश्यक एवं अवैज्ञानिक अधिसंरचनाओं के निर्माण कार्यों तक ही सीमित कर दिया गया है। यह अलग सवाल है कि अभी फौरी तौर पर जिसे विकास कहा जा रहा है उसका दूरगामी विकास से कोई रिश्ता है भी या नहीं? या विनाश की तरफ ले जाने की एक जानी-अनजानी प्रक्रिया है। विकास की इस प्रक्रिया से माल-मुनाफा अर्जित करने वाले इस बात से बेफिक्र नज़र आते हैं क्योंकि

वे अपने द्वारा किये गये विनाश से भी मुनाफा कमाने के विशेषज्ञ हैं।

अनावश्यक एवं अवैज्ञानिक अधिसंरचनाओं के निर्माण को ही विकास मानने की अवधारणा के तहत उत्पादन इकाइयों (कल-कारखाने, एस.ई.जेड.), कच्चे माल (माइनिंग), ऊर्जा (बड़े-बड़े बांध, परमाणु ऊर्जा संयंत्रों, प्राकृतिक गैसों-तेलों), संचार व्यवस्था (सड़क, रेल लाइन, हवाई अड्डे, बंदरगाह) तथा शहरों का विस्तार (मण्डी, बाज़ार, मॉल्स, गोदाम, होटल, फ्लाई ओवर, आवासीय कालोनियों) आदि के लिए हर कदम पर ज़मीनों की, नदियों के पानी की, प्राकृतिक खनिज पदार्थों, प्राकृतिक गैसों की अधिक से अधिक ज़रूरत होगी। अतएव विकास की मलाई काटने के लिए वही ज़्यादा कारगर होगा जिसके पास पूंजी के साथ-साथ ज़्यादा से ज़्यादा ज़मीनों का मालिकाना होगा। अतएव ज़मीन दिन प्रतिदिन बेशकीमती होती जा रही है।

इसके साथ ही ज़मीन की भूख इसलिए भी बढ़ती जा रही है क्योंकि दुनिया के बड़े-बड़े पूंजीपति और उनके खेमे ऐसे वित्त पर टिके हैं जो 'निर्गुण ब्रह्म' की तरह अदृश्य हैं। यह वित्तीय बुलबुले कब फूट जायेंगे इसका कोई भरोसा और सही आकलन भी मौजूद नहीं है। हर महीने, हर साल आने वाले वित्तीय संकट से उबरने का कोई सुव्याख्यायित तरीका इस व्यवस्था के नियंताओं के पास न है और न हो सकता है। हाल में (वर्ष 2008) संयुक्त राज्य अमरीका के बंद होते बैंकों के दृश्यों को देखा गया है। आर्थिक मंदी, मुद्रास्फीति तो रोज रोज की सुखियां हैं। आप सोचें यदि यह अदृश्य-पूंजी हमेशा के लिए अदृश्य हो जाय, यदि वित्तीय पूंजी का रंग-रोगन, ताम-झाम टूट-फूट जाय तथा बैंकिंग सेक्टर धराशायी हो जाय तो इस आर्थिक व्यवस्था की तथा अपनी पूंजी के हितों की रक्षा कैसे की जा सकेगी? इससे प्रभावित होने की समस्या से सशंकित पूंजीपति वर्ग ने अपने बचाव के तरीकों के बारे में भी सोच-विचार कर कोई रास्ता ढूंढने की जुगत भिड़ा रखी है। वे इस बात के लिए बुरी तरह से आतुर हैं कि इस अदृश्य वित्तीय पूंजी (जिसकी वफादारी का कोई भरोसा नहीं) को "सब्सटेंशियल कैपिटल" (टिकाऊ/स्थायी पूंजी) जिस पर भरोसा किया जा सकता है, में कैसे बदला जाय। इसके लिए वे "फिज़िकल एसेट्स" को कब्ज़ाने की होड़ में लग गये हैं। इस तरह

के एसेट्स में “भूमि” एक बेहतर विकल्प है। अतएव ज़मीनों पर कब्ज़ा करना आज पूंजीपति वर्ग के लिए बाध्यता बन गयी है। इसके अलावा उन्हें अपनी पूंजी बचाने तथा मुनाफा बढ़ाने का कोई रास्ता फिलहाल नज़र नहीं आ रहा है। इसीलिए ज़मीन की भूख बढ़ती जा रही है।

भूमि आज ‘ग्लोबल कम्युनिटी’ की होती जा रही है। ‘वित्त’ की स्थितियाँ तो घटती-बढ़ती रहेंगी, परंतु भूमि की कीमत तो लगातार बढ़नी ही है। अतएव भूमि का ज्यादा से ज्यादा मालिकाना आज बाजार की ‘डायनेमिक्स’ है। अतएव आज की तथाकथित वैश्विक पूंजी पूरी की पूरी जमीन को बाजार के हवाले करके न केवल अपने मुनाफे को बढ़ाने पर आमादा है बल्कि ‘वित्तीय संकटों’ से प्राणरक्षा के लिए भी इस फार्मूले को आज की तारीख में सही मान रही है। इसीलिए बाजार पर अपना पूर्ण वर्चस्व बनाते हुए वैश्विक पूंजी ने ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कर दी हैं कि उसके दबाव में, जो स्वाभाविक रूप में उसी के हित में होंगे, भूमि कानूनों में तेजी के साथ बदलाव कराये/किये जा रहे हैं।

इसीलिए जहां किसी परियोजना या कारखाने के लिए 5 हेक्टेयर ज़मीन की ज़रूरत है वहां पर भी 50 से 100 हेक्टेयर ज़मीन की मांग की जाती है और सरकार की कृपा से मिल भी जाती है। सैकड़ों साल पुराने कई ऐसे कारखाने भी हैं जिनके पास इतनी फालतू ज़मीन है कि वे अपने पुराने कारखाने में ही एस.ई.ज़ेड. की स्थापना करने की सोच रहे हैं।

‘मैनुफैक्चरिंग’ के स्थान पर आज पूंजी के निशाने पर भोजन, पानी, दवा तथा शिक्षा आ गये हैं। भोजन के व्यापार तथा खाद्यान्न के व्यापार के लिए एस.ए.ज़ेड. (स्पेशल एग्रीकल्चर जोन), कारपोरेट फार्मिंग (जिसकी झलक गंगा एक्सप्रेस वे तथा यमुना एक्सप्रेस वे परियोजनाओं से मिल रही है), पानी के लिए बड़े-बड़े बांधों तथा नदियों पर नियंत्रण, स्वास्थ्य के धंधे के लिए जंगलों-पहाड़ों में जड़ी-बूटियों का उत्पादन तथा शिक्षा से मुनाफा कमाने के लिए बड़े-बड़े स्कूल-कालेज-इंस्टीट्यूट्स तथा विश्वविद्यालय की स्थापना। इन सारे कार्यों के लिए ज्यादा से ज्यादा ज़मीनों की ज़रूरत पड़ रही है अतएव ज़मीन बेशकीमती होती जा रही है।

इन परिस्थितियों में दो स्पष्ट ध्रुव बनते जा रहे हैं पहला वह जिसने खाना, पानी, दवा और शिक्षा तक को पूंजी के निशाने पर रखा है तथा दूसरा वह जो अपनी ज़मीन, वन, खनिजों, खेती, नदी, पानी की रक्षा के लिए तथा अपनी छिनती जीविका—छिनते अस्तित्व की रक्षा के लिए संघर्ष के रास्ते पर है। इन दोनों ध्रुवों के बीच जारी द्वंदात्मक संघर्ष में समाज में मौजूद ताकतें, नीतियां, कानून निरपेक्ष नहीं हो सकते। इसी पैमाने पर भूमि—अधिग्रहण अधिनियम के प्रस्तावित संस्करण को भी परखना उचित होगा।

इस तरह के कानून एक सुनिश्चित राजनीतिक—आर्थिक—सामाजिक व्यवस्था की उपज होते हैं। इसका विश्लेषण अपनी पसंद—नापसंद, नेताओं के व्यक्तित्व की विशिष्टताओं के आधार पर करके हम जो भी निष्कर्ष पायेंगे उसके भ्रामक बने रहने की पूरी संभावनायें रहेंगी। इससे कोई विशेष अंतर नहीं पड़ने वाला कि कौन सा कानून औपनिवेशिक दौर में बना और कौन सा स्वतंत्र भारत में बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि कानून का उद्देश्य क्या है और इसका व्यापक आबादी पर क्या प्रभाव पड़ने वाला है? बाज़ार की तर्ज पर आज नये—नये कानून बनाये जा रहे हैं 'एक खरीदो एक मुफ्त में पाओ'। भूमि अधिग्रहण को मानो, आर. आर. पालिसी को मुफ्त में पाओ, वनों के बाहरी हिस्से में आओ पट्टा मुफ्त में पाओ, अपनी ज़मीने खाली कर दो कलिंगनगर में टाटा से मुफ्त में आवास, बिजली, पानी, भोजन पाओ—लांजीगढ़ में अनिल अग्रवाल से मुफ्त में पाओ। विकास लो, जल जंगल ज़मीन दो—मुआवजा लो नहीं तो 'आपरेशन ग्रीन हण्ट' के लिए तैयार रहो। अभी प्रस्तावित भूमि अर्जन पुनर्वास एवं पुनःस्थापन विधेयक 2011 में भूमि अधिग्रहण के विरोधियों या असहमति रखने वालों के खिलाफ दण्डनात्मक कार्यवाही का भी प्रावधान प्रस्तावित है। इस अधिनियम के जब नियम जारी किये जायेंगे तब यह बताया जायेगा कि यह दण्ड कैसा होगा? कितनी आर्थिक फाइन तथा कितने दिन की सजा? भूमि अधिग्रहण के विरोध का अपराध (?) देशद्रोह की कोटि में आयेगा या नहीं? यह अपराध गैर जमानती होगा या नहीं?

इतना ही नहीं जमीन कब्जाने के तमाम नये—नये लोकलुभावन तरीकों/बहानों

को भी खोज निकाला गया है— मौसम में आ रहे परिवर्तनों को नियंत्रित करने के नाम पर जंगल पर आधिपत्य; रीयल स्टेट के विकास, सेज, साज तथा बीज उत्पादन हेतु समतल जमीन पर आधिपत्य; एक्सप्रेस—वे एवं हाई—वे के नाम पर सड़कों के किनारे की जमीनों पर कब्जा; समुद्र तटों पर होटल एवं पर्यटन के नाम पर कब्जा। और यह सब विकास के गाजे—बाजे के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है, इसे विश्व शक्ति बनने के लिए अनिवार्य बताया जा रहा है। इन सारी योजनाओं को देशभक्ति तथा देशाभिमान के साथ जोड़ा जा रहा है, चाहे पोखरण का परमाणु परीक्षण हो या कारपोरेट्स के लिए भूमि उपलब्ध कराने का मामला हो। इसे गुजरात प्रांत में बखूबी देखा जा सकता है जहां नरेन्द्र मोदी हर मामले को गुजरात के स्वाभिमान से जोड़ देते हैं। देशभक्ति एवं उपनिवेशवाद—साम्राज्यवाद के तालमेल का नुस्खा कोई नया नहीं है। आजादी के लिए चल रहे संघर्ष के बीच में ब्रिटानिया हुकूमत की मदद के लिए गांधी की 'एक भाई, एक पाई' देने की अपील को लोग भूले नहीं हैं। वास्तव में मुनाफाखोरों के लिए —'देशभक्ति' एक साधन रहा है 'साध्य' नहीं। वर्ष 1900 में बिरसा को फासी देने के बाद सी.एन.टी.एक्ट बनाया गया परंतु उसे तब तक (वर्ष 1908) नहीं लागू किया गया जब तक कि टाटा को टाटानगर बसाने तथा स्टील कारखाना बनाने के लिए जमीन नहीं दे दी गयी। क्योंकि इस एक्ट के लागू होने के बाद टाटा को यह जमीन नहीं मिल सकती थी। टाटा ने आगे चलकर इस एहसान के बदले में अंग्रेजों की खूब मदद की। द्वितीय विश्व युद्ध के समय टाटा जैसे राष्ट्रीय पूँजीपति ब्रिटिश साम्राजियों के हथियारों के कारखानों को लोहा और इस्पात सप्लाई कर मालामाल हो रहे थे। टाटा ने तरह तरह के रासायनिक पदार्थ ब्रिटिश साम्राजियों की फौज को सप्लाई किए और रसायन के कितने ही नए कारखाने बंगाल, पंजाब, मैसूर, बड़ौदा, त्रावनकोर आदि में खोले। सीमेंट, अल्मुनियम, इंजीनियरिंग आदि उद्योगों के मालिक भी मालामाल हो रहे थे। बहुत से 'देशभक्त' और खदरधारी व्यापारी फौज को रसद सप्लाई कर लखपति से करोड़पति बन रहे थे। गांधीवादी खादी आश्रम भी बहती गंगा में हाथ धो रहे थे और कपड़ा—कंबल सप्लाई कर अपनी पूँजी बढ़ा रहे थे। वास्तव में मामला मुनाफे का था।

इसी तरह आज भी देश की विश्व शक्ति बनने की घोषणाओं के पीछे असली मकसद लोगों की भावनाओं का दोहन करके ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाना ही है और यह अधिनियम इसी दिशा में बढ़ने का मुकम्मल सबूत है।

अगर थोड़ा हम पीछे मुड़कर देखें तो यह साफ दिखता है कि सामूहिक सम्पत्तियों को धीरे-धीरे निजी सम्पत्तियों में बदला गया, फिर बची-खुची सामूहिक सम्पत्तियों को राज्य की सम्पत्ति के रूप में रखा गया और अब राज्य इन सामूहिक तथा सार्वजनिक सम्पत्तियों (भूमि, खनिज, जंगल, नदी, अन्य जलस्रोतों) को कम्पनियों तथा कारपोरेट को सौंपता जा रहा है तथा तर्क दिया जा रहा है कि यह सम्पत्तियाँ किसी की निजी नहीं हैं बल्कि सरकार की हैं। अतएव किसी को विरोध करने का वैधानिक अधिकार नहीं है। साथ ही राष्ट्र के विकास के लिए सरकार के पास पर्याप्त पूँजी नहीं है अतएव देशी-विदेशी कारपोरेट्स को विकास के कार्यों में जोड़ा जा रहा है। पी.पी.पी., बी.यू.टी., एफ.डी.आई. आदि के नायाब तरीके बताये जाते हैं।

इन हालात की बारीकियों तथा षड्यन्त्रों के संदर्भ में स्पष्ट सोच रखते हुए ही हम प्रस्तावित भूमि-अधिग्रहण अधिनियम 2011 को देखें तो तस्वीर धुंधली नहीं बल्कि साफ-साफ दिखायी देगी।

आज वैश्विक स्तर पर चल रही वंचितीकरण की प्रक्रियाओं, असमानता तथा भेदभाव पर टिके ढांचों, निर्मम शासन व्यवस्था जो मुनाफे एवं वर्चस्व के अमानवीय मूल्यों पर टिकी है, के रहते यह उम्मीद करना कि विकेन्द्रीकरण, लोकतंत्र, समानता जैसे तत्व महत्व पायेंगे केवल सदिच्छा हो सकती है हकीकत नहीं। इसे सफल और असफल, विशिष्ट और सामान्य, मजदूर और मालिक, नियंता एवं नियंत्रित के बीच जारी द्वंदात्मक संघर्ष के रूप में समझने की ज़रूरत है। विश्व व्यापार संगठन, अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों तथा इसके 'मानीटर्स' और देश के अंदर मौजूद इनके दलालों ने इस द्वंद को जाने अनजाने में वैश्विक धरातल प्रदान कर दिया है। इसका इस्तेमाल करते हुए ढांचों, प्रक्रियाओं, मूल्यों को बदलने की दिशा में बढ़ना हमारी जिम्मेदारी हो गयी है।

कहने का तात्पर्य यह है कि भूमि-अधिग्रहण अधिनियम का प्रस्तावित नया संस्करण अपने आप में कोई स्वतंत्र या अलग से अस्तित्ववान कोई कृत्य नहीं है वरन् यह जारी प्रक्रियाओं का एक महत्वपूर्ण पहलू मात्र है। यदि इस समझ को आधार बनाकर हम इस कानून का विश्लेषण करेंगे तो निश्चित तौर पर एक सही रणनीतिक पहल की दिशा तय होगी।

आज ज़रूरत इस बात की भी है कि भूमि अधिग्रहण की अधिकतम सीमा तय हो, कृषि भूमि की न्यूनतम सीमा तय हो, योजनाओं-परियोजनाओं, खनन, स्टील एवं सीमेंट आदि का उत्पादन देश की ज़रूरत के आधार पर हो न कि मुनाफाखोरी के लिए। आज जब दुनिया एक ध्रुवीय बनती जा रही है, दक्षिणपंथी रुझान बढ़ रहा है, विरोध-प्रतिरोध के स्वर कुचल दिये जा रहे हैं, राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मौजूद लोकतांत्रिक संस्थानों (संसद, न्यायपालिका, अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं) का इस्तेमाल अलोकतांत्रिक कार्यों के लिए किया जा रहा है, वर्चस्ववादी एवं केन्द्रीकरण की प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं तब भी दुनिया के लगभग सभी भागों में जन आंदोलन इन हालातों को चुनौती दे रहे हैं। यह संघर्ष भले ही आमूल-चूल बदलाव में कामयाब न हो पा रहे हों लेकिन पूंजीवादी वैश्वीकरण की गति को समय-समय पर कम करने में कामयाब रहे हैं। साम्राज्यवाद के नये संस्करण-उदारीकरण-निजीकरण के खगोलीकरण के इस दौर में मुनाफाखोर कंपनियों (देशी-विदेशी) की निगाहें जल-जंगल-जमीन समेत प्राकृतिक संसाधनों पर तेज़ी के साथ टिकी हैं वहीं पर इनकी रक्षा के लिए पूरी दुनिया में संघर्ष चल रहा है। आज पूरी मानवता की रक्षा के लिए चलने वाले संघर्ष तथा मुनाफाखोरी के बीच एक सीधा अंतर्विरोध है। इसका समाधान कुछ कानूनी खानापूति या कुछ सुधार आयोग बना देने या कुछ नयी-नयी अंतर्राष्ट्रीय घोषणायें कर देने मात्र से हल होने वाला नहीं। जारी ढांचों, प्रक्रियाओं तथा कायम व्यवस्था और इसके मूल्यों को बदले बगैर क्या किसी परिवर्तनकारी नीति या कानून की गुंजाइश हो सकती है और वह भी ऐसे समय में जब सारी की सारी प्रक्रियायें वैश्विक रूप से एकरूपता लिए हुए हों? और हमारे शासकवर्ग ने राष्ट्र-राज्य की संप्रभुता को गिरवी रख दिया हो।

भूमि—अधिग्रहण : सोच—नज़रिया एवं सफर

प्रारंभिक दौर में भारतीय समाज में “जमीन समाज की है” की मान्यता तथा परम्परा थी। परंतु आगे चलकर इसमें परिस्थितिजन्य परिवर्तन आये/ लाये गये। जमीन पर निजी मालिकाना का भी दौर आया। इस दौर में भी सामूहिक/ सार्वजनिक जमीनों के साथ ही साथ जंगलों, पहाड़ों, नदियों, तालाबों, चरागाहों, खनिज पदार्थों का स्वीकार्य अस्तित्व था। समय का पहिया घूमता रहा और राज्य ने इन सामूहिक—सार्वजनिक सम्पत्तियों का भी मालिक अपने आपको घोषित कर दिया तथा श्रीमती इंदिरा गांधी के शासनकाल के दौरान भूमि के निजी मालिकाने को मौलिक अधिकारों की सूची से अलग करके इसे वैधानिक अधिकारों की सूची में डाल दिया गया। आज समकालीन दौर में राज्य ने सामूहिक—सार्वजनिक सम्पदा पर कब्जा करने के बाद इसे मुक्त बाजार के हवाले करना तेजी के साथ शुरू कर दिया है।

आज भूमि के मालिकाने तथा सामूहिक—सार्वजनिक सम्पदाओं के संदर्भ में भारतीय समाज की मान्यताओं और परम्पराओं को उलट दिया गया है। यह वही भारतीय समाज है जिसके आदिवासियों के अगुआ ताना भगत (खूँटी, झारखण्ड) ने अंग्रेजों को भूमि कर देने से मना करते हुए यह घोषणा की थी कि **चूँकि 'यह भूमि हमारी है अतएव इस पर टैक्स देने का सवाल ही पैदा नहीं होता।'**

भूमि अधिग्रहण की अवधारणा मूल रूप से इस मान्यता की उपज है कि सारी जमीन अंततः राज्य की संपत्ति है। देश की भौगोलिक सीमाओं के भीतर पड़ने वाली सारी जमीन राज्य की मिल्कियत है। इसलिये जमीन के वर्तमान और भावी प्रयोग के बारे में फैसला करने की अंतिम शक्ति राज्य के हाथों में ही निहित है। जहां एक तरफ जमीन के विकास और रखरखाव के लिये एक समान व्यवस्था के विकास के लिहाज से यह अवधारणा एक हद तक आवश्यक है वहीं इसमें भी कोई शक नहीं है कि राज्य के शासक समूह का एक हिस्सा इस प्रकार राज्य स्वामित्व के नाम पर अपने स्वार्थों की पूर्ति भी करता है। यह संभवतः एक लोकतांत्रिक व्यवस्था की देन है जिसमें सभी प्रकार की संपत्तियों को सभी लोगों की मिल्कियत मान लिया जाता है।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम की विषयवस्तु और औचित्य संबंधी वक्तव्य के अनुसार

सार्वजनिक कल्याण और आर्थिक विकास के क्षेत्र में सरकार की चिंतायें सर्वोपरि हैं और इसलिये आवश्यकता पड़ने पर भूमि अधिग्रहण अपरिहार्य है। वक्तव्य और आगे जाकर स्पष्ट करता है कि सार्वजनिक कल्याण को बढ़ावा देने के साथ-साथ उस व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा भी की जानी चाहिये जिसकी जमीन उपरोक्त कल्याणकारी कार्यों के लिये अधिग्रहित की जा रही है, क्योंकि उसकी भूमि के अधिग्रहण की स्थिति में वह अपने आजीविका के साधनों से वंचित हो जाता है।

आगे कहा गया है कि निजी उद्यम के लिये भूमि अधिग्रहण को प्राथमिकता के लिहाज से सार्वजनिक उद्देश्य के समकक्ष नहीं रखा जा सकता है। दरअसल 1984 में इन्हीं कारणों को अधिनियम में संशोधन की वजह के रूप में रखा गया था। किन्तु जब हम भूमि अधिग्रहण से जुड़े अनगिनत विवादों के फ़ैसलों पर नज़र डालते हैं, और यह देखते हैं कि राज्य ने भूमि अधिग्रहण के लिये कैसा रवैया अख्तियार किया है तो पता चलता है कि इस वक्तव्य की पवित्रता महज एक कागजी जमा-खर्च से ज्यादा कुछ भी नहीं है और इसको अमली जामा पहनाने की कोई संजीदा कोशिशें की ही नहीं गयी हैं।

भूमि-अधिग्रहण अधिनियम की पृष्ठभूमि वर्ष 1824 में ही बनने लगी थी जब ब्रितानी औपनिवेशिक शासकों ने यह महसूस किया था कि ज़मीनों को बलात कब्ज़ाने के कृत्य को कानूनी जामा पहनाया जाय (सभ्य लोग असभ्य तरीका कैसे अपनाते?)। इसमें पहला कदम बंगाल बंदोबस्त-1 (वर्ष 1824) था जो इसी सिद्धांत पर आधारित था कि राज्य को यह अधिकार है कि वह सार्वजनिक उपयोग के लिए निजी संपत्ति को अधिग्रहीत कर ले। इस बंगाल बंदोबस्त-1 ने राज्य को सड़कों, नहरों और अन्य सार्वजनिक कार्यों के लिए भू-अर्जन हेतु सक्षम बना दिया तथा आगे चलकर वर्ष 1850 में रेलवे हेतु भूमि अर्जित की जा सकी। कलकत्ता, मद्रास एवं बंबई की सीमा में आने वाले भौगोलिक क्षेत्रों के लिए अलग-अलग बनाये गये कानून वर्ष 1857 तक पूरी ब्रिटिश इंडिया सीमा में लागू कर दिये गये।

वर्ष 1870 में मुआवजे की राशि तय करने के नियम भी प्रतिपादित तथा परिभाषित किये गये तथा मुआवजे के संदर्भ में विवाद होने की स्थिति में वाद दायर करने का कानूनी हक भी दिया गया। 'ब्रिटिश राज' के दरम्यान भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया धीरे-धीरे विकसित होती रही। भूमि के साथ ही उनकी निगाह वनों पर भी नियंत्रण कायम करने की थी। अतएव उन्होंने भारतीय वन अधिनियम 1865, भारतीय वन अधिनियम 1878 (संशोधित), भारतीय वन नीति 1894 तथा भारतीय

वन अधिनियम, 1927 (संशोधित एवं परिवर्तित) समय-समय पर बनाये। इस बीच अंग्रेज हुक्मरानों को अपने राज की हिफाजत की चिंता भी सता रही थी।

भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 के दौरान अंग्रेजी सरकार ने बहुत सारे ऐसे कानून बनाये थे, जिनके उपयोग से आम जनता के विरोध के स्वर को कमजोर तथा नियंत्रित किया जा सके। उसी दौर के कानूनों में यह भूमि-अधिग्रहण कानून भी था जो 1894 से आज तक लगभग उसी रूप में लागू है। इस कानून के जरिये शासन समय-समय पर जनता की निजी तथा शामिलत मिल्कियत की ज़मीनें 'लोकहित' के नाम पर विभिन्न राष्ट्रीय, राज्य तथा निजी कंपनियों, योजनाओं, परियोजनाओं के लिए अधिग्रहीत करता रहा है।

इस औपनिवेशिक कानून का मुख्य सरोकार था— राज्य सार्वजनिक उद्देश्य के लिए भूमि का अधिग्रहण जल्दी तथा सहजता से कर सके तथा अधिक मुआवजे को सरकारी संसाधनों के दुरुपयोग के रूप में देखा जा सके और इससे बचा जा सके। इस मुख्य सरोकार का फल यह था कि 'सार्वजनिक उद्देश्य' की कोई कानूनी व्याख्या प्रस्तुत नहीं की गयी तथा यह माना जाने लगा कि राज्य द्वारा यह घोषणा करना ही पर्याप्त होगा कि 'सार्वजनिक उद्देश्य' क्या है? दूसरा फल यह था कि मुआवजा तय करने के लिए ऐसे नियम बनाये गये जिससे 'अधिक मुआवजा' देने से बचा जा सके।

वर्ष 1947 में औपनिवेशिक राज की समाप्ति के बाद भारत के गणतांत्रिक संविधान के अनुच्छेद-372 में यह व्यवस्था दी गयी कि जब तक विधिवत परिवर्तन न हो जाय ब्रिटिश राज में बनाये गये कानून जारी रहेंगे। परिणामस्वरूप भूमि-अधिग्रहण कानून 1894 भी यथावत जारी रखा गया। आज़ाद भारत में 'ब्रिटिश भारत' की तुलना में निर्माण कार्यों, बड़े बांधों, ऊर्जा संयंत्र, खदान, इस्पात एवं इंजीनियरिंग संयंत्र आदि में एकाएक तेज़ी आयी। इन निर्माण कार्यों, उद्योगों के लिए इसी कानून के तहत ज़मीनों का अधिग्रहण किया गया। फलतः छोटे किसानों, खेतिहर मज़दूरों, भूमिहीनों, दस्तकारों तथा वनों में रहने वालों का बड़ी संख्या में विस्थापन-पलायन हुआ। इन परियोजनाओं के नाते आज़ाद भारत के शुरुआती 50 सालों में (यदि समाज वैज्ञानिकों के आकलन तथा अध्ययन को सही माना जाय) तो लगभग 5 करोड़ लोग विस्थापन-पलायन का शिकार हुए हैं।

राज्य द्वारा बलात हथियायी गयी ज़मीनों का मकसद सार्वजनिक क्षेत्र और

राजकीय परियोजनायें ही नहीं रही हैं। यहां तक कि नेहरूयुगीन शासनकाल में भी राज्य सरकारों द्वारा निजी उद्योगों के लिए भी ज़मीनें अधिग्रहीत की गयीं। इस संदर्भ में सर्वोच्च न्यायालय का वर्ष 1962 का फैसला (आर. एल. आरोरा बनाम उ. प्र. राज्य) जिसमें न्यायालय ने कहा कि टेक्सटाइल मशीन उत्पादक कंपनी के लिए भूमि अधिग्रहण को 'सार्वजनिक उद्देश्य' की कोटि में नहीं रखा जा सकता एक महत्वपूर्ण फैसला था।

यह एक ऐसा मौका था जिसका इस्तेमाल नेहरू की सरकार इस कानून की बेइंसाफियों को खत्म करने में कर सकती थी। परंतु इसके ठीक उलट नेहरू की सरकार ने इस कानून में संशोधन भूमि-अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम, 1962 के द्वारा ऐसी निजी कंपनियों के लिए भूमि-अधिग्रहण को भी सार्वजनिक उद्देश्य की कोटि में ला दिया जो कंपनियां सार्वजनिक उद्देश्य हेतु उत्पादन करने जा रही हैं। इस प्रकार नेहरू के दौर का राज्य यह हक हासिल करने में कामयाब रहा कि वह निजी उद्योगों के लिए भी भूमि-अधिग्रहण कर सकता है। परिणामतः न्यायालयों में निजी कंपनियों एवं संस्थानों की विभिन्न प्रकार की परियोजनायें— को-ऑपरेटिव सोसायटी के सदस्यों के लिए आवास, अल्मुनिया ब्रिक्स, छात्रावासों का निर्माण, एलेक्ट्रो-केमिकल फैक्ट्री, चीनी मिल आदि को सार्वजनिक उद्देश्य की पूर्ति की कोटि में स्वीकृति मिलती रही और इन कार्यों के लिए राज्य द्वारा भूमि अधिग्रहण को वैधानिक ठहराया जाता रहा। 1967 में भी कुछ संशोधन किये गये जो अधिग्रहीत भूमि के प्रयोजनों को घोषणा के तीन वर्ष के अंदर ही बदले जा सकते थे जिससे राज्य को अधिग्रहीत भूमि के प्रयोजनों को बदलने का भी अधिकार मिल गया।

इस कानून में एक बार फिर से संशोधन श्रीमती इंदिरा गांधी के शासन काल में किया गया। भूमि-अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम, 1984। इसके द्वारा ज़मीन के मालिकों को मुआवजे के संदर्भ में थोड़ा सहूलियत मिली और भूमि-अधिग्रहण की समयावधि तय की गयी। 1984 में किया गया यह संशोधन भारत सरकार द्वारा बिना किसी लोकतांत्रिक सहभागिता पर आधारित बहस के भारतीय पूंजीपतियों तथा औद्योगिक घरानों के दबाव में किया गया था।

निस्संदेह संशोधन अधिनियम, 1984 ने भूस्वामियों को कुछ राहत तो दी लेकिन इससे सरकार की शक्तियों में भी इजाफा हुआ है। अब जमीन का अधिग्रहण किसी सार्वजनिक निगम द्वारा भी किया जा सकता है, मानो वह सार्वजनिक उद्देश्य के लिये हो। धारा 4 और 6 के बीच तीन वर्ष की अधिकतम समय सीमा निर्धारित कर दिये जाने से भूस्वामियों को राहत मिली।

सांत्वना राशि 15 प्रतिशत से बढ़ाकर 30 प्रतिशत कर दी गयी और आपात अधिग्रहण की स्थिति में, मुआवजे का 80 प्रतिशत अंश तत्काल अदा किया जाना आवश्यक किया गया। संशोधन यह भी सुविधा देता है कि यदि एक व्यक्ति अदालत के माध्यम से अपना मुआवजा बढ़वा लेता है तो उस आदेश का सहारा लेकर दूसरे व्यक्ति भी अपनी राशि बढ़वा सकते हैं, किन्तु अधिनियम में मुआवजे की राशि के दिए जाने के बारे में कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई थी। 2007 में भी कुछ संशोधन करने की योजना बनी थी परंतु 14वीं लोकसभा भंग हो जाने के कारण यह पूरी न हो सकी।

इन भूमि-अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियमों ने कुल मिलाकर, भूमि अधिग्रहण के विषय में राज्य की शक्तियों को बढ़ाया ही है। अधिनियम साफ तौर पर संपन्न वर्ग के पक्ष में है, जो सार्वजनिक उद्देश्य के नाम पर मिट्टी के मोल जमीनें खरीद कर मकान, दुकान, क्लब और होटल जैसे निर्माण करते हुए बेहिसाब कमाई कर सकता है। अधिनियम साफ तौर पर जन विरोधी है, क्योंकि आम आदमी को अपने वैध हकों के लिये साल-दर-साल लड़ना पड़ता है और उसके बाद भी वह राहत और सम्मानजनक भरण-पोषण की आशा नहीं रख सकता है।

नेहरू एवं इंदिरा गांधी के समय में किये गये इन संशोधनों ने कंपनियों के प्रयोजन हेतु भूमि अधिग्रहण को भू-स्वामियों पर बाध्यकारी बना दिया। इसमें निजी तथा सामूहिक मिल्कियत दोनों तरह की ज़मीनें शामिल हो रही हैं।

आज आज़ादी के 64 साल बाद एक निर्वाचित तथा लोकतांत्रिक (?) यू.पी.ए. सरकार इस अधिनियम में संशोधन करके इसे और ज़्यादा जनविरोधी बनाने तथा पूंजी के हित में और कारगर बनाने हेतु आमादा है। इस कानून में 'कंपनी' के स्थान पर 'व्यक्ति' तथा 'प्राइवेट माइनिंग' को ढांचागत विकास का कार्य बताते हुए राज्य इस प्रयोजन हेतु भूमि अधिग्रहण करके इसे सक्षम व्यक्ति/यों (अर्थात् संसाधन संपन्न पूंजीपति/यों) को सौंपेगा, इसी प्रक्रिया को प्रस्तावित संशोधन में मज़बूती से समाहित कराने की तैयारी है। लेकिन बार-बार कहने के बावजूद भी 'सार्वजनिक उद्देश्य' की कानूनी व्याख्या/परिभाषा को अनसुना बनाये रखा गया है।

इस संदर्भ में कर्नाटक के भूमिहीन कृषकों की तरफ से दायर की गयी पी.आई. एल. पर सर्वोच्च न्यायालय ने मई 2007 में राज्य के मुख्य सचिवों तथा कृषि एवं वाणिज्य मंत्रालय को नोटिस जारी करके कहा था कि वे यह स्पष्ट करें कि 'सार्वजनिक उद्देश्य' का तात्पर्य क्या है? इस जनहित याचिका में

भूमि-अधिग्रहण अधिनियम 1894 की धारा 3(f), 4 और 6 की संवैधानिकता को चुनौती देते हुए इन धाराओं को भारतीय संविधान की मूल भावना तथा संविधान के अनुच्छेद-14 (समानता का अधिकार), 19(1)(g), 21 (जीने का अधिकार तथा व्यक्तिगत स्वतंत्रता) के अलावा संविधान में प्रदत्त अन्य अधिकारों की अवहेलना बताया गया था। परंतु आज भी यह प्रश्न अनुत्तरित है।

आज हालात यह हैं कि ज़मींदारी उन्मूलन अधिनियम, सीलिंग एक्ट, सी. एन. टी. एक्ट, एस.पी.टी. एक्ट संविधान के अनुच्छेद-5 में आदिवासियों को विशेष संरक्षण के प्रावधानों तथा अनुसूचित जातियों को भूमिहीनता से बचाने के लिए किये गये विशेष प्रावधानों, भूमि के मूल चरित्र के रूपांतरण पर लगाये गये अवरोधों-आदि जो एक सीमा तक खेतिहर समाज, आदिवासियों, भूमिहीनों, सीमांत किसानों तथा अनुसूचित एवं अनुसूचित जनजातियों के हितों का संरक्षण कर रहे थे, को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया है।

इस बीच धीरे-धीरे अधिग्रहण के तरीकों में भी गुणात्मक परिवर्तन आ चुका है। पहले के दौर में उद्योगों की स्थापना के स्थानों का निर्धारण सरकार और उसकी इण्डस्ट्रियल डेवलपमेंट एजेंसीज़ के द्वारा किया जाता था। इन औद्योगिक क्षेत्रों में भूमि या शेड्स उद्योग लगाने हेतु सरकार द्वारा लीज पर या बेच कर उपलब्ध कराये जाते थे। इस तरह के क्षेत्रों में लगने वाले उद्योगों को कर्ज़ आदि देने में इण्डस्ट्रियल डेवलपमेंट कारपोरेशन्स तथा बैंक वरीयता भी देते थे और कई मामलों में 'जीरो इण्डस्ट्रियल एरिया' में उद्योग लगाने पर उद्योगों को कम ब्याज पर कर्ज़ के साथ ही साथ छूट (सब्सिडी) भी प्रदान की जाती थी। यह ऐसा दौर था जिसमें उद्योगपतियों को मनचाही जगह पर उद्योग लगाने हेतु कोई सरकारी मदद उपलब्ध नहीं करायी जाती थी और यह लगभग असंभव था क्योंकि सरकार अपने द्वारा तय किये गये औद्योगिक क्षेत्रों में ही बुनियादी ढांचा-बिजली, पानी, यातायात, बैंक तथा गोदाम आदि की व्यवस्था करती थी।

इस व्यवस्था से दो लाभ नज़र आ रहे थे- एक तो यह है कि औद्योगिक विकास में क्षेत्रीय संतुलन कायम रहे और दूसरा यह कि कृषि भूमि की रक्षा की जा सके तथा भूमि उपयोग का चरित्र (नवैय्यत) न बदलना पड़े। इसका कारण तत्कालीन सरकार पर औद्योगिक विकास एवं खाद्यान्न संप्रभुता दोनों को साथ लेकर चलने का कायम दबाव था। इन सरकारी नियंत्रणों का तीसरा प्रभाव यह भी था कि उद्योगों पर उत्पादन के साथ ही साथ यथासंभव श्रम समायोजन का भी दबाव बना रहता था। **फलतः औद्योगिक उत्पादन, अधिकतम श्रम समायोजन तथा खाद्यान्न संप्रभुता की तरफ काफी हद तक बढ़ा जा सका।**

लेकिन अभी हाल के 20-25 सालों में परिदृश्य एकदम उलटा हो गया है। अब उद्योगपति / कंपनियां यह तय कर रही हैं कि वे उद्योग कहां लगायेंगी तथा सरकार की भूमिका यह हो गयी है कि वह कंपनी द्वारा चुने गये स्थान पर कंपनी की स्थापना में पूरी ताकत झोंक दे और वहां पर सार्वजनिक मद से बुनियादी ढांचे विकसित करे जिससे कंपनियां सहजता से अपना कार्य कर सकें। इस खातिर सरकार (रें) लगातार कानूनों, नीतियों में बदलाव करती रही हैं / कर रही हैं। इसे सेज अधिनियम 2006 के प्रावधानों के ज़रिये सहजता से समझा जा सकता है। इसके तहत 70 फीसदी ज़मीन कंपनी जहां भी चाहे ढूँढ ले बाकी 30 फीसदी ज़मीन सरकार अधिग्रहीत करके उपलब्ध करा देगी। कंपनियों (देशी / विदेशी) को दी गयी इस छूट का परिणाम यह हुआ है कि उड़ीसा के नियामगिरि की माइनिंग, पाराद्वीप बंदरगाह के बगल में नये निजी बंदरगाह बनाने, उड़ीसा-झारखंड-छत्तीसगढ़-हिमाचल प्रदेश के तमाम पहाड़ों-वनो-नदियों- ज़मीनों को कब्ज़ा कर कारोबार करने की छूट कंपनियों को सरकार(रें) द्वारा प्राप्त हो गयी है। इसके खातिर सरकार(रें) वनीकरण, पर्यावरण, प्रदूषण, नदियों की रक्षा तथा प्रकृति संरक्षण का भोंपू बजाते हुए कंपनियों को वन काटने, पहाड़ खोदने, अंधाधुंध माइनिंग करने, बड़े-बड़े बांध बनाने, नदियों को सुरंगों से गुजारने की खुली वैधानिक(?) अनुमति भी देती आ रही हैं। अतएव इन तथाकथित विकास कार्यक्रमों(?), सम्य बनाने(?) के नुस्खों में एक बार फिर से ज़मीन का ज़्यादा मालिकाना कंपनियों / कारपोरेट्स के लिए मलाईदार एजेण्डा बना हुआ है।

इस बीच एक और तरह के भूमि सुधार और भूमि आबंटन शुरू हो गए हैं। इनकी दिशा बिल्कुल उलटी है। हमारी सरकारें जोतने वाले को ज़मीन देने के बजाय बड़ी-बड़ी कंपनियों और पूंजीपतियों को जमीन बांटने में लगी हैं। विशेष आर्थिक क्षेत्रों, बड़े उद्योगों, बड़े बांधों, राजमार्गों और शहरी कॉलोनियों के लिये बड़े पैमाने पर किसानों से जमीन छीनी जा रही है। कलिंगनगर, सिंगुर, नंदीग्राम आदि के बाद तो भूमि को लेकर सबसे अहम सवाल विस्थापन का ही बन गया है। सेज (विशेष आर्थिक क्षेत्र) योजना इस मामले में सबसे ज्यादा विनाशकारी सिद्ध हो रही है। विशेष आर्थिक क्षेत्र बनाने की होड़ के पीछे एक कारण 'कर मुक्ति का स्वर्ग' है, तो दूसरा प्रमुख कारण सस्ती दरों पर महंगी जमीन हथियाने का मौका।

विशेष आर्थिक क्षेत्रों के प्रस्तावों की संख्या अब पांच सौ के नज़दीक पहुंच रही है। अगर एक विशेष आर्थिक क्षेत्र का क्षेत्रफल औसतन दो हजार हेक्टेयर माना जाये, तो देश की दस लाख हेक्टेयर कीमती भूमि तो इनकी बलि चढ़ने

वाली है। सबसे बड़े विशेष आर्थिक क्षेत्र रिलायंस कंपनी के हैं जो गुडगांव, नवी मुंबई, भावनगर आदि में दस हजार हेक्टेयर से लेकर बीस हजार हेक्टेयर तक के क्षेत्र में बन रहे हैं। आज देश का सबसे बड़ा ज़मींदार अंबानी बन गया है। आज़ादी के साठ साल बाद अब देश में नई ज़मींदारियां कायम हो रही हैं। रेल मंत्री ममता बनर्जी का का बयान था कि रेलवे ने 1.33 लाख एकड़ का लैण्ड बैंक तैयार किया है।

शोषण को जारी रखते हुए जमीन हथियाने के लिए लोगों के बीच में अवधारणाओं (पैराडाइम) को लेकर भी भ्रम की स्थितियाँ पैदा करके उन्हें सुनहरे सपने दिखाये जा रहे हैं। **विकास की अवधारणा** किस प्रकार से सत्ता संतुलन को बदलती है इस पर लोगों में स्पष्टता नहीं है तथा भ्रमपूर्ण स्थिति है; **संरक्षण की अवधारणा** के अन्तर्गत वन संरक्षण, जल संरक्षण आदि की भ्रमपूर्ण अवधारणा बरकरार है; **जलवायु परिवर्तन के तरीके** को लेकर भी कार्बन ट्रेडिंग आदि के संदर्भ में भ्रमपूर्ण अवधारणा बरकरार है; आधुनिक प्रबंधन, स्वास्थ्य प्रबंधन, जल प्रबंधन, भोजन प्रबंधन आदि पर भी वही स्थिति है, **सामुदायिक सहभागिता** को लेकर भी भ्रमपूर्ण स्थिति है जहां मतदान तक ही सामुदायिक सहभागिता सीमित कर दी गयी है — वाटर यूजर एसोशियन, जल पंचायत, जे.एफ.एम. आदि।

पार्टियों तथा सिद्धांतों की सीमाओं को तोड़ते हुए इस संदर्भ में राज्य सरकारें भी बढ़ चढ़कर अपनी भूमिका निभा रही हैं। **संविधान के अनुच्छेद 246** के द्वारा प्रदत्त अधिकारों का प्रयोग करते हुए राज्य सरकारों ने भी भूमि कानूनों में समय-समय पर बदलाव करके यह सुनिश्चित करने का प्रयास किया है कि कंपनियों को ज़मीनें आसानी से मिल सकें तथा ग्राम सभाओं, ग्रामवासियों को किसी न किसी तरह से ज़मीनों के मालिकाने से दूर किया जा सके। हरियाणा, राजस्थान, मध्य प्रदेश तथा उत्तराखंड आदि राज्य किसी अन्य राज्य से कम सक्रिय नहीं हैं। इस संदर्भ में मध्य प्रदेश तथा उत्तराखंड राज्यों के बारे में संक्षेप में जान लेना अनुचित न होगा।

वर्ष 2008-09 में मध्यप्रदेश सरकार ने गैर-वन परती भूमि को प्लांटेशन के लिये कंपनियों को मामूली शुल्क पर तीस वर्ष के लिए देने की नीति घोषित की है। प्रदेश सरकार का आकलन है कि वह पच्चीस लाख हेक्टेयर भूमि इस कार्य हेतु बांट सकती है। विशेषकर जैव-डीजल के मकसद से रतनजोत (जट्रोफा) लगाने के लिए हजारों-लाखों हेक्टेयर भूमि कंपनियों को देने के करार किए जा रहे हैं। एक करार एक ही कंपनी को निमाड़-मालवा के पांच जिलों में तीन लाख हेक्टेयर भूमि रतनजोत (जट्रोफा) लगाने के लिये देने का हुआ है। यह

वही इलाका है, जहां नर्मदा पर बड़े बांध बन रहे हैं और उनके लाखों विस्थापितों को देने के लिए सरकार के पास भूमि नहीं है।

जिस ज़मीन को बंजर, परती या फालतू भूमि बता कर कंपनियों को बांटा जा रहा है, वह वास्तव में फालतू नहीं है। उस पर गरीब गांववासी मेहनत करके खेती कर रहे हैं। इसके अलावा वह सामुदायिक उपयोग की भूमि है। इसमें गांववासी पशुओं को चराते हैं, जलावन, वनोपज, जड़ी-बूटी, मिट्टी, पत्थर, मुरम, रेच आदि अनेक चीजें प्राप्त करते हैं। यह ज़मीन कंपनियों को देने का मतलब ग्रामीण गरीबों को इन चीजों से वंचित करना होगा।

आमतौर पर यह माना जाता है कि वन संबंधी कड़े कानूनों के कारण वनभूमि को आसानी से कंपनियों को नहीं दिया जा सका है और वन बचे हुए हैं। लेकिन उदारीकरण की हवा वहां भी बह रही है। **केंद्रीय वन एवं पर्यावरण मंत्रालय में वनभूमि को भी वृक्षारोपण के लिए कंपनियों को देने के प्रस्ताव पर गंभीरता से विचार चल रहा है।** लगभग सभी वन-बाहुल राज्यों में वन विभाग ने अतिक्रमण हटाने के नाम पर बड़े पैमाने पर आदिवासियों को बेदखल करना शुरू कर दिया है। मध्यप्रदेश में 28 हजार पट्टे वनवासियों को दिए गए हैं। साथ ही, मध्यप्रदेश सरकार ने तीस लाख हेक्टेयर के विशाल क्षेत्र को आरक्षित वन घोषित करने की प्रक्रिया तेज कर दी है। माना जा रहा है कि इसमें लगभग तिहाई निजी भूमि है। इससे लोगों का भूमि और जंगल पर से हक छिन जाएगा। भारतीय वन कानून 'आरक्षित वन' के नियम सबसे सख्त हैं। वहां खेती, चराई, वनोपज और जलाऊ लकड़ी, मिट्टी, मछली आदि किसी भी चीज़ को निकालने की अनुमति नहीं होगी।

उत्तराखंड की स्थिति भी लगभग इसी तरह की बनी हुई है। कांग्रेस सरकार द्वारा दो बार, पहला 12 सितंबर 2003 को और दूसरा 15 जनवरी 2004 को, भू-अध्यादेश लाये जाने के बाद भाजपा की सरकार भी 2 मई 2007 को एक नया भू-अध्यादेश ले आई। कृषि, कृषि-भूमि और खेतिहर समाज का सवाल यदि प्राथमिकता में होता और लगातार घटती कृषि भूमि व ज़मीन का बाहरी लोगों के हाथों में हो रहा हस्तांतरण सरकारों की चिंता का विषय होता तो इन अध्यादेशों को लाने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। क्योंकि ये तीनों अध्यादेश कहीं से भी इन सवालों का समाधान नहीं करते। यह सर्वविदित है कि राज्य की 75 प्रतिशत से ज़्यादा आबादी आज भी कृषि पर पूरी तरह निर्भर है मगर भूमि संकट के चलते इस आबादी के सामने अब अस्तित्व का संकट खड़ा हो रहा है। राज्य में कृषि भूमि अब मात्र 10 प्रतिशत के आसपास ही बची है और पहाड़ के ऊँचे हिस्सों में तो यह अभी मात्र 6 प्रतिशत के आसपास है। यही नीतियां

चलती रहीं तो यह प्रतिशत और घटेगा। इस संकट के लिए उत्तराखंड पर थोपे गये वे तमाम नियम, कानून और कार्यक्रम जिम्मेदार हैं, जो कृषि क्षेत्र के विस्तार को रोक रहे हैं। इनमें 1893 का भू अध्यादेश और 1960 का कूजा एक्ट प्रमुख है। 1893 में अंग्रेज शासकों द्वारा पहाड़ की बेनाप, बंजर परती चरागाह आदि श्रेणी की जमीनों को वन भूमि के दायरे में लाने के लिये एक अध्यादेश लाया गया था। उसके बाद सन 1960 में इस क्षेत्र के लिये लाये गये 'कुमाऊँ उत्तराखंड जमींदारी विनाश एवं भूमि सुधार कानून' के जरिये इस भूमि को राज्य के खाते में डाल कर ग्राम पंचायतों से इसके प्रबंध एवं वितरण का अधिकार छीन लिया गया। सन् 1997 में तत्कालीन उ.प्र. सरकार ने एक आदेश के माध्यम से इस भूमि पर 1893 में अंग्रेजों द्वारा लाये गये शासनादेश को दोबारा लागू कर दिया। इसके चलते कृषि क्षेत्र का विस्तार पूर्ण रूप से प्रतिबंधित हुआ और सरकार द्वारा चलायी जाने वाली तमाम योजनाओं के लिये भूमि की आवश्यकताओं की पूर्ति भी कृषि भूमि से की जाने लगी। राज्य में मौजूद वर्तमान कृषि एवं कृषि-भूमि संकट का यही मुख्य कारण है।

मगर नया राज्य बनने के बाद भी सरकारें इन सवालों के सामने हाथ खड़े करते नजर आ रहीं हैं। आखिर क्या कारण है कि ये सरकारें एक के बाद एक तीन भू-अध्यादेश ले आयीं, मगर वे 1893 के भू अध्यादेश को निरस्त कर उसकी जगह नया कानून बना कर समस्त बेनाप, बंजर, परती, चारागाह आदि श्रेणी की जमीनों को ग्राम पंचायतों को लौटाने को तैयार नहीं हैं। वे राज्य में पंचायतों को भूमि के प्रबंध व वितरण का संवैधानिक अधिकार नहीं देना चाहतीं। तब इन भू-अध्यादेशों से किसका हित सधेगा?

उत्तराखंड के अंदर भू-माफिया और बड़े बिल्डर की एक शक्तिशाली लॉबी काम करती है, जिसकी पकड़ राज्य की सत्ता और सत्ताधारी पार्टियों पर मजबूत है। इधर रियल स्टेट, कॉलोनाजेशन और ज़मीन पर पूंजी लगाने के लिये उत्तराखंड आकर्षण का केन्द्र बन कर उभरा है। **अंडरवर्ल्ड की जो ताकतें पहले मुंबई और दिल्ली में पूंजी लगा रही थीं, उनके लिये उत्तराखंड ने नयी संभावनाएं पैदा की हैं।** उन्होंने यहां के बिल्डरों व कॉलोनाइजर्स के साथ अपने व्यापारिक रिश्ते जोड़कर उनके माध्यम से यहां पूंजी निवेश करना शुरू कर दिया है। अपनी मनमाफिक सरकार बनवाने और अपने हित में नियम कानून बदलवाने के लिये ये ताकतें बड़े पैमाने पर सत्ता में पहुंचने वाली पार्टियों पर धन खर्च कर रही हैं।

बहुत कम लोगों ने इस बात पर ध्यान दिया है कि भाजपा सरकार ने नया भू-अध्यादेश लाने से पहले कॉलोनाइजेशन और आवास निर्माण के लिये कुछ ऐसे नये नियम व निर्देश जारी किये थे, जिनके अनुसार इस क्षेत्र में अब सिर्फ बड़ी पूंजी वालों को ही निर्माण की इजाजत मिलेगी। उसके बाद लागू हुआ भू-अध्यादेश शहरों और उसके इर्द-गिर्द के गांवों में आर जोन (रिहायशी क्षेत्र) में तो जमीन की खरीद की कोई सीमा तय नहीं करता, ऊपर से कृषि क्षेत्र में भी 250 वर्ग मीटर जमीन खरीदने की इजाजत दे देता है। यानी बिल्डर 103 लोगों के नाम से एक साथ पांच एकड़ भूमि लेकर उस पर बहुमंजिला भवन बना कर कम से कम पांच सौ लोगों को बेच सकते हैं। इसी तरह से लोगों की संख्या बढ़ा कर वे गांव के गांव भी खरीद सकते हैं। तब यह भू-अध्यादेश भू-माफिया व बिल्डरों पर अंकुश कैसे लगा पायेगा?

भू-कारोबार में लगे एक हिस्से ने इस अध्यादेश का विरोध किया था। मगर उस विरोध के पीछे जमीन की बिक्री पर अंकुश का सवाल नहीं था, बल्कि यह चिंता ज्यादा थी कि यह कारोबार बड़ी पूंजी वालों के हाथों में जा रहा है। बड़ी और अंडरवर्ल्ड की पूंजी के डर से छोटे और मझोले भू-कारोबारी विरोध में आवाज बुलंद कर रहे हैं। ज़ाहिर है कि सरकार शक्तिशाली बड़ी पूंजी के पक्ष में मजबूती से खड़ी है।

अकेले छत्तीसगढ़ राज्य में पिछले 10 वर्षों में (राज्य बनने के बाद से आज तक) 69000 एकड़ कृषि भूमि का अधिग्रहण गैर-कृषि कार्यों के लिये किया जा चुका है। यह बात विधानसभा में वहां की सरकार ने स्वीकार की। शिवनाथ जैसी नदी की बिक्री जल आधारित स्थानीय अर्थ-व्यवस्था की मौत का एलान है। वहीं कृषि भूमि का व्यापक पैमाने पर अधिग्रहण खाद्यान्न संकट को खुला न्यौता देना है। उत्तर प्रदेश में भी अकेले गंगा एक्सप्रेस-वे परियोजना (नोएडा से बलिया) के प्रथम चरण में 40 हजार एकड़ उपजाऊ जमीन की जरूरत पड़ेगी। काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के सिविल इंजीनियरिंग विभाग में गंगा नदी पर शोध के लिए 1985 में गठित गंगा प्रयोगशाला के संस्थापक प्रो० यू० के० चौधरी का कहना है कि इस परियोजना के अन्तर्गत 10 साल के अंदर लगभग एक लाख एकड़ कृषि भूमि का गैर-कृषि कार्यों में प्रयोग किया जायेगा जिससे अनुमानतः 50 लाख क्विंटल गेहूँ का उत्पादन प्रतिवर्ष घट जायेगा। प्रो० चौधरी का कहना है कि इस परियोजना से न केवल गंगा और प्रदूषित होगी बल्कि गंगा बेसिन की जलवायु भी प्रभावित होगी।

यह सब जानते हुए भी भूमि-अधिग्रहण के लिए सक्रिय सरकारें किसके हित में

कार्य कर रही हैं और नया अध्यादेश क्यों लायी हैं। सहजता से समझा जा सकता है।

आज जब केन्द्र और सभी राज्य सरकारें बहुराष्ट्रीय निगमों और कॉरपा. 'रेट घरानों को कृषि क्षेत्र में उत्पादन, फूड प्रोसेसिंग, थोक व खुदरा व्यापार तक का क्षेत्र उपलब्ध करा रही हैं, तब यहां की राज्य सरकार से पूँजीपति वर्ग के लोगों को जमीन की बिक्री पर प्रतिबंध लगवाने की उम्मीद करना निहायत बेवकूफी होगी।

विश्व बैंक, एशियन डेवलेपमेंट बैंक सरीखे अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थान राष्ट्र राज्यों के ऊपर इस तरह की शर्तें थोपते आ रहे हैं तथा दिशा निर्देश जारी करते आ रहे हैं जिससे कि पूंजी अपने अतृप्त पेट को भरने के एक जुगाड़ के रूप में ज़मीन का उपभोग सरलता से कर सके। इस उपभोग में खड़ी बाधाओं— वैधानिक, वित्तीय आदि को रास्ते से हटाने की ज़िम्मेदारी "राष्ट्र-राज्य" पर प्रत्यारोपित कर दी गयी हैं।

इस संदर्भ में अगस्त 1996 में युनाइटेड नेशंस डेवलेपमेंट प्रोग्राम (यू.एन.डी.पी.), युनाइटेड नेशंस सेंटर फॉर ह्यूमन सेटेलमेंट (यू.एन.सी. एच.एस.) एवं विश्व बैंक द्वारा अरबन मैनेजमेंट प्रोग्राम हेतु जारी शहरी भूमि नीतियों में सुधार हेतु दिशा-निर्देश को जानते हुए हम यह समझ सकते हैं कि भूमि कानूनों तथा भूमि-अधिग्रहण कानूनों में प्रस्तावित संशोधन कहां से और क्या प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं:

नीतिगत बदलाव हेतु जारी यह दिशा-निर्देश सरकार के स्तर पर महत्वपूर्ण राजनैतिक फैसले तथा विनियमितीकरण एवं निजीकरण को स्पष्ट तौर पर बढ़ावा देने वाली प्रतिबद्धता की मांग करते हैं। इन सुधारों की गुंजाइश तथा गंभीरता अलग-अलग हो सकती है। उदाहरण के लिए भूमि उपयोग से संबंधित सुधार की शुरुआत शहरों के 'मास्टर प्लान' से की जा सकती है तथा मास्टर प्लान को लक्ष्य किया जा सकता है। सार्वजनिक भूमि विकास एजेंसीज़ का पुर्नगठन, बड़ी अथॉरिटीज़ (प्राधिकरणों) को छोटे-छोटे ऑपरेशंस में बदलना और भूमि विकास कार्यक्रमों को निजीकृत करना— अधिक महत्वाकांक्षी सुधार कार्यक्रम होगा।

सुधारों को और विस्तार देने के लिए चाहे वह छोटा संशोधन हो या व्यापक बदलाव— इसके लिए कानून बनाना होगा। इन सुधारों के लिए संपत्ति के अधिकार की व्यवस्था में भी मूलभूत बदलाव की ज़रूरत होगी। अतएव शहरी भूमि में नीतिगत बदलाव की रणनीति बनाने से पूर्व

राजनैतिक एवं तकनीकी मसलों के आकलन की ज़रूरत होगी।

इन दिशा-निर्देशों के प्रमुख कदम/बिन्दु हैं:-

सुधार का पहला कदम : भूमि के बाज़ार का आकलन-

अधिकांश देशों में एक अनिवार्य समस्या यह है कि भूमि उपयोग नीतियां सरकारी नियंत्रण में हैं और निजी क्षेत्र के संस्थानों को इस संदर्भ में पर्याप्त सरकारी सहायता प्राप्त नहीं हो पायी है।

अतएव सरकारों के लिए पहला और आवश्यक कदम यह होना चाहिए कि वे शहरी भूमि के संबंध में अपनी नीतियों की जांच-पड़ताल तथा समीक्षा करें। इस संदर्भ में हमने एक तरीका विकसित किया है जो भूमि बाज़ार आकलन (लैण्ड मार्केट एसेसमेंट) के रूप में जाना जाता है।

दूसरा कदम : भूमि प्रबंध प्राधिकरणों का विकेंद्रीकरण-

शहरी भूमि नीति में परिवर्तन करना सरल हो जायेगा यदि इस संबंध में जिम्मेदारियां स्थानीय शासन को स्थानांतरित करके उन्हें इस कार्य हेतु अधिकृत कर दिया जाय। शहरी भूमि नीति के लिए राष्ट्रीय स्तर पर इसका आकलन करते हुए तथा कानूनी एवं संस्थागत प्रावधानों को समझते हुए इसे ठीक ढंग से बनाने एवं लागू किये जाने की ज़रूरत है। यदि स्थानीय शासन को शक्तियां प्रदान की जाती हैं तो सुधार कार्यक्रम तेज़ी के साथ आगे बढ़ सकेंगे और यह स्थानीय भूमि बाज़ार की स्थितियों के साथ बेहतर तालमेल वाला भी होगा।

तीसरा कदम : विनियमितीकरण-

शहरी भूमि नीतियों एवं नियम-कानूनों का सजग एवं संतुलित विनियमितीकरण भूमि की कीमत कम करेगा और भूमि बाज़ार की कार्य क्षमता को बढ़ायेगा। कीमत कम करने हेतु प्रथम और सबसे प्रभावशाली कदम यह है कि भूमि-उपयोग एवं विकास के मध्य भूमि की आपूर्ति (उपलब्धता) एवं भूमि की मांग के बीच संतुलन बनाया जाय। आवासीय भूमि के स्थानीय स्तर का आकलन किया जाय तथा निचली ज़मीनों के विकास एवं निर्माण की लागत को संशोधित किया जाय। भूमि-उपयोग एवं विकास नियंत्रण सरलीकृत किया जाय तथा संस्तुति की प्रक्रिया छोटी की जाय।

चौथा कदम : भूमि विकास की सार्वजनिक एजेंसियों की भूमिका कम की जाय-

बहुत से देशों में भूमि विकास की सार्वजनिक एजेंसियां भूमि बाज़ार के प्रयासों

के लिए बहुत ही कम काम करती हैं, नहि निर्धन तबके के लोगों के लिए भूमि या आवास उपलब्ध कराती हैं और अकसर सरकार के ऊपर वित्तीय बोझ बढ़ाती रहती हैं। इसलिए सरकारों के लिए यह आवश्यक है कि वे ऐसी एजेंसियों की भूमिका का आकलन करें और सुधारात्मक कदम उठायें। इस तरह के उठाये जाने वाले कदमों में वृहत् आकार के बहुराज्यीय निगमों/प्राधिकरणों के आकार को छोटा करने हेतु उनका पुर्नगठन, सभी के सभी का निजीकरण या इन निगमों के किसी भाग का निजीकरण या इन्हें समाप्त करना शामिल है।

पांचवा कदम – भूमि बाज़ार के प्रयासों में क्षमता का संवर्द्धन–

बाज़ार–आधारित व्यवस्था वाले देशों में जहां पर परंपरागत तथा अनौपचारिक भूमि व्यवस्था होती है वहां सरकार को बड़ा मद निवेश करना होता है या निजी पहल को प्रश्रय–बढ़ावा देना होता है जिससे कि भूमि स्वामित्व के रिकार्ड एवं पंजीयन व्यवस्था को ठीक करके भूमि की खरीद–फरोख्त को बढ़ावा दिया जा सके। इसके लिए कम से कम पार्सल मैप बनाना होता है साथ ही साथ रिकार्ड रखने की व्यवस्था, जिसमें रीयल इस्टेट के लेन–देन का रिकार्ड दर्ज हो और भूमि के मालिकाना का रिकार्ड भी अपडेट किया जाना चाहिए। यह मैप क्षेत्रीय स्तर तथा सब–डिवीज़न के स्तर पर होने चाहिए।

यदि संपत्ति कर का प्रावधान है तो टैक्स एवं भूमि के लेन–देन का अतिरिक्त रिकार्ड भी होना चाहिए। साथ ही साथ संपत्ति की कीमत, टैक्स एसेसमेंट, भुगतान एवं प्राप्तियों का भी रिकार्ड होना चाहिए।

छठवां कदम : ढांचागत निर्माण हेतु नेटवर्क बनाना तथा उसे वित्तीय, संस्थानिक एवं समुचित स्वरूप प्रदान करना–

शहरी भूमि नीति के टिकाऊ ढांचागत निर्माण हेतु निवेश–कार्यक्रम के साथ समन्वय होना चाहिए। इस तरह के कार्यक्रमों के लिए इस बात की ज़रूरत है कि प्रत्येक शहर के लिए एक समुचित समग्र बुनियादी खाका तैयार किया जाय। इसमें आने वाली लागत का भी आकलन किया जाना चाहिए। इस आकलन में उन खर्चों को भी शामिल किया जाना चाहिए जो विकास कार्य को आगे बढ़ाने के लिए बुनियादी ढांचे के रूप में ज़रूरी होते हैं। वित्तीय प्रबंधन भी टिकाऊ होना चाहिए अर्थात् इस बात की पूरी कोशिश होनी चाहिए कि बुनियादी ढांचों के लाभार्थी तथा उपभोगकर्ता उपयोग हेतु भुगतान करें।

अब यह कहने की ज़रूरत नहीं कि 'जवाहरलाल नेहरू नेशनल अरबन रिन्यूवल मिशन' आदि योजनायें इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिए ही लायी गयीं।

पूँजी की फौरी ज़रूरत 'शहरीकरण' को विस्तार देने में यह योजना महती भूमिका अदा करेगी वह भी जनता की निधि से। निश्चित तौर पर उपरोक्त निर्देशों का जल्दी से जल्दी तथा मुकम्मल पालन करने वाले शहरों को ही ढांचागत विकास आदि के लिए अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थान कर्ज़ आदि की व्यवस्था करेगा।

शहरों के विस्तार, माइनिंग परियोजनाओं, इस्पात, सीमेंट कारखानों, ऊर्जा संयंत्रों, बांधों, गंगा एक्सप्रेस—वे सरीखी विशाल सड़क योजनाओं, हवाई अड्डों, होटलों, मॉल्स, नेशनल पार्कों, अभ्यारण्यों, आवासीय कालोनियों आदि तथाकथित विकास परियोजनाओं के लिए ज़्यादा से ज़्यादा ज़मीनों की ज़रूरत पड़ेगी। अतएव यह आवश्यक है कि **भारत के खेतिहर समाज तथा वनवासियों को अपनी ज़मीन, जंगल तथा पानी से बरकरार रखी गयी आसक्ति को खतम कराया जाय।** अतएव ग्रामीण जीवन को गैर आकर्षक बनाया जाय, वे पशुपालन, कृषि तथा वनों पर आश्रित रहने की पिछड़ी (?) आदतें छोड़ें। इसके लिए भारतीय समाज की रीढ़ कृषि, वन आधारित जीविका तथा जल आधारित स्थानीय अर्थव्यवस्था को तहस—नहस करना ज़रूरी माना गया होगा और इसके लिए खाद, बीज, कीटनाशक, एम.एस.पी., बिजली दरों, सिंचाई दरों आदि का बखूबी इस्तेमाल किया गया जिससे कि किसान खेती—बारी छोड़कर शहरों की तरफ भागें और खेती—किसानी का काम भी कारपोरेट के सक्षम (?) हाथों में पहुँच जाय।

हम जानते हैं कि हमारे देश में कृषि के जो तरीके हैं उनसे न केवल उस परिवार का भरण—पोषण होता है जिसकी ज़मीन है, बल्कि अन्य कम—से—कम नौ परिवारों की आजीविका भी चलती है। हमें यह भी ज्ञात है कि ग्रामीण परिवारों का अभी भी एक बहुत बड़ा हिस्सा ऐसा है जो अपनी फसल का एक बड़ा भाग अपने स्वयं के उपयोग के लिए पैदा करता है। एक ओर खेती के तरीके और जोत के स्वरूप ने बढ़ती हुई बेरोजगारी के विरुद्ध ढाल का काम किया है तो दूसरी ओर व्यवसायिक खेती के विपरीत जीवनयापन के लिए कृषि ने खाद्य के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता की आवश्यकताओं को बल प्रदान किया है। **इन दोनों पक्षों ने लंबे समय से बेरोजगारी और खाद्य सुरक्षा के परिप्रेक्ष्य में ढाल की भूमिका निभाई है।**

परंतु कृषि व्यापार से जुड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के निहित स्वार्थों को पूरा करने व उन्हें खुश करने के उद्देश्य से जारी राष्ट्रीय कृषि नीति इन दोनों विशिष्टताओं की बलि चढ़ा रही है। परिणामस्वरूप— खेती और कृषि—व्यापार के लिए निजी कृषि भूमि पट्टे पर देने के उद्देश्य से लीज बाज़ार के विकास की जो योजना

बनी है उससे टेक्नोलोजी और पूंजी से लैस कंपनियों के पास बड़ी मात्रा में भूमि पहुंच रही है।

यह कोशिश है कि पिछड़ी तकनीक और पूंजी के अभाव के कारण भारतीय किसान अपनी ज़मीन को कंपनियों के हाथों किराये पर देने को मजबूर हो जायँ। इन कंपनियों पर किराये की जोत की मात्रा को सीमाबद्ध करने का कोई तरीका नहीं होगा, क्योंकि कृषि नीति का नीतिगत मसौदा इस मुद्दे पर चुप्पी साधे है।

उच्च प्रौद्योगिकी और भारी पूंजी निवेश वाले कृषि फार्मों में मजदूर बहुत कम संख्या में रखे जाएंगे और सदियों से चली आ रही व्यवस्था एक भूमिधर परिवार 9 अन्य परिवारों को खिलाएगा वाली; सोच गायब हो रही है।

आज जो कृषि नीति जारी है वह निर्यात आधारित, व्यवसायिक फसलों और बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा नियंत्रित कृषि लागत की पक्षधर है जो खाद्यान्न संकट को बढ़ायेगी।

इस नीति का नतीजा यह होने जा रहा है कि **ग्रामीण भारत में मुट्ठीभर लोग कृषि—व्यापार में लगी बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ मिल कर पैसा बटोरेंगे और एक राष्ट्र के रूप में भारत को बड़े पैमाने पर खाद्यान्न शीर्ष पांच निर्यातक देशों से मंगानी होगी।**

हमें यह ज्ञात है कि पिछले वर्षों में वित्त और वाणिज्य मंत्रालयों द्वारा घोषित नीतियों ने भारतीय कृषि के हितों को पहले ही बहुत नुकसान पहुंचाया है और मौजूदा कृषि—नीति भारतीय कृषि की पूरी तरह से कमर तोड़ रही है।

आज यह गंभीर मसला है कि जब राष्ट्र—राज्य अपने ही नागरिकों के हित के खिलाफ खड़ा है। तब ऐसे समय में **भारतीय किसानों को कृषि—व्यापार में लगी बहुराष्ट्रीय कंपनियों का दलाल होने से कैसे बचाया जाय और कृषि फार्म मजदूर को अपने ही देश की सड़कों पर भीख मांगने को मजबूर होने से कैसे बचाया जाय?**

अतएव विश्व बैंक के दिशा—निर्देशों, पूंजी के बदलते चरित्र, राष्ट्र—राज्य की बदलती भूमिका, कृषि नीति में किये जा रहे आत्मघाती बदलावों तथा गाँवों को गैर—आकर्षक बनाते हुए शहरीकरण के विस्तार की कवायद आदि प्रक्रियाओं को ध्यान में रखकर हमें भूमि—अधिग्रहण के प्रस्तावित अधिनियम का विश्लेषण करना होगा।

भूमि—अधिग्रहण : कुछ बुनियादी सवाल

भारतीय समाज में भूमि का मालिकाना (सामूहिक या निजी) एक महत्वपूर्ण मसला रहा है। समाज में मौजूद सत्ता संतुलन का भी यह एक आधार रहा है तथा मान-सम्मान का प्रतीक भी। भूमि व्यापक आबादी की जीविका का आधार रहा है। राज्य का चाहे जो भी दौर रहा हो जंगल-ज़मीन के सवाल पर उसके वर्चस्व तथा अधिनायकवादी हस्तक्षेप को सहजता से स्वीकार नहीं किया गया है। झारखंड के आदिवासियों का विद्रोह, 1861 में होशंगाबाद के बोरी क्षेत्र का विद्रोह जिसमें विद्रोही जागीरदार भभूत सिंह को जबलपुर जेल में फांसी पर अंग्रेजों ने लटका दिया, तेलंगाना आंदोलन, तैभागा आंदोलन, नील की खेती के खिलाफ गांधी का चम्पारन आंदोलन, महाराष्ट्र के आदिवासियों का विद्रोह आदि आंदोलन ब्रिटिश राज में खड़े हुए तथा आज़ाद भारत में कोयलकारो, नेतरहाट, हीराकुंड, चिल्का, बोध गया आंदोलन, नर्मदा, गंदमारदन जैसे संघर्ष खड़े हुए वहीं उदारीकरण-निजीकरण के दौर में काशीपुर, कलिंगनगर, सिंगुर, नंदीग्राम, पोस्को विरोधी, वेदांत विरोधी, मित्तल विरोधी, जिंदल-भूषण विरोधी, सेज विरोधी, गंगा एक्सप्रेस-वे विरोधी, यमुना एक्सप्रेस-वे विरोधी, नेशनल पार्क विरोधी, बड़े बाँध विरोधी, मोगरा बाँध विरोधी, विस्थापन विरोधी, शाल घाटी बचाओ आंदोलन, किन्नौर बचाओ आंदोलन, सोमपेटा का आंदोलन, प्लाचीमाडा का आंदोलन तथा परमाणु ऊर्जा संयंत्र विरोधी आंदोलन कहीं न कहीं ज़मीन, पानी तथा जंगल हथियाने के खिलाफ तथा मानवता एवं प्रकृति की रक्षा के लिए समर्पित रहे हैं।

इस पूरे दौर में सत्ता को कई बार घुटने भी टेकने पड़े हैं परंतु सत्ता उसका चरित्र चाहे जैसा रहा हो, उसने हमेशा शक्ति के बल पर और जनता के हितों के विपरीत कानून-नीतियां बनाकर लोगों की आवाज़ दबाने का काम किया है। इन कानूनों में भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 एक महत्वपूर्ण कानून रहा है। 1962, 1967 तथा 1984 में इस अधिनियम में प्रमुख संशोधन किये गये। 1999 से लगातार यह कोशिश की जा रही है कि इस अधिनियम में संशोधन किया जाय तथा इसकी धाराओं में परिवर्तन किया जाय। आजादी के बाद जन-संघर्ष एवं जन-संगठन के प्रतिनिधियों द्वारा लगातार

‘भूमि अधिग्रहण कानून’ का विरोध करते हुए समय-समय पर इसे बदलने की मांग भी उठायी गयी। 1980 के दरम्यान ‘भूमि अधिग्रहण अधिनियम’ बनाने की प्रक्रिया भी केन्द्र सरकार द्वारा जोर-शोर से शुरू की गई थी, लेकिन समाज के विभिन्न प्रगतिशील ताकतों के विरोध एवं जन दबाव के चलते उस दौरान इस प्रक्रिया को शासन ने रोक लिया था। उल्लेखनीय है कि पिछले 20-30 वर्षों से जनसंगठन भू-अर्जन अधिनियम की वर्तमान कानूनी पहल एवं सोच को बदलने हेतु लगातार दबाव बनाते रहे, लेकिन इन मांगों पर शासन के कानों में कभी जू तक नहीं रेंगी। पिछले दिनों औद्योगिक विकास तथा रियल स्टेट के व्यवसाय की वृहद संभावना को देखते हुए कॉरपोरेट घराने भूमि-अधिग्रहण अधिनियम बदलने के लिए शासन पर लगातार दबाव डालते रहे हैं। विश्व बैंक एवं अन्तर्राष्ट्रीय वित्तीय संस्थाएं पिछले 20 वर्षों से लगातार भारत सरकार को इस पर सुझाव देती रहीं तथा नियामक आयोग और ढांचागत परिवर्तन की बात भी करती रहीं। विश्व बैंक और एशियाई विकास बैंक का मानना है कि तेज गति से विकास के लिए जमीन के लेन-देन की प्रक्रिया भी द्रुत गति से चलनी चाहिए और जमीन बाजार को नियंत्रित करने के लिए एक संस्थागत ढांचे की आवश्यकता है, जिसमें शासन की दखलंदाजी कुछ विशेष न हो। सेज कानूनों से यह बात स्पष्ट परिलक्षित होती है।

पिछले दिनों सेज कानून 2006 को संशोधित करते हुए यह स्पष्ट किया गया कि सेज के लिए इच्छुक कंपनी के लिए 70 प्रतिशत जमीन की स्वयं व्यवस्था करने के बाद शासन द्वारा 30 प्रतिशत जमीन उपलब्ध करायी जायेगी।

इससे स्पष्ट है कि कंपनी अपने हिस्से की जमीन खरीदने हेतु किसी भी तरह के हथकंडे (साम, दाम, दंड, भेद) अपना सकती है जिसका सीधा प्रभाव स्थानीय लोगों पर पड़ेगा।

यहां उल्लेखनीय है कि पिछले दिनों उद्योग हेतु जमीन अधिग्रहण की प्रक्रिया को देश के विभिन्न हिस्सों में जन आक्रोश का सामना करना पड़ा और इस जन आक्रोश को दबाने के लिए शासन ने भी कोई कसर नहीं छोड़ी, चाहे किसी भी राजनैतिक दल की सरकार क्यों न हो। इन परिस्थितियों से निजात पाने के लिए पुनर्वास एवं पुनर्स्थापना नीतियों को अंतिम रूप देने के लिए केंद्र सरकार का प्रयास चल रहा है जिसमें उद्योग तथा विकास के लिए बलि चढ़ने वाले लोगों को आजीविका की सुरक्षा तथा क्षतिपूर्ति की बात अहम् रूप

से कही गई है। वन क्षेत्रों में भी अभ्यारण्य, राष्ट्रीय उद्यान तथा बांध परियोजना को लेकर विस्थापन करने की प्रक्रिया तेजी से जारी है। उद्योग के विरोध में किसानों का माहौल, सेज तथा 'रियल स्टेट बूम' के विरोध में भूमि खोने वालों का जन आक्रोश, बांध, रास्ता आदि के नाम पर लोगों से जमीन छीनने की प्रक्रिया से उभरे जन आक्रोश व्यापक जनमत बनायेंगे। चाहे बंगाल का नंदीग्राम, सिंगूर हो, या हरियाणा, पंजाब, छत्तीसगढ़, काकीनाड़ा (आन्ध्र प्रदेश), कलिंगनगर, पॉस्को, नियामगिरि (उड़ीसा) हो, इन सभी जगहों की घटनाएं राष्ट्रीय जनमत को प्रभावित करेंगी। इसलिए राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण राजनैतिक दलों ने कुछ कानून और नीति बनाकर भ्रम की स्थिति पैदा करने के लिए प्रचारित कर रही हैं कि अधिग्रहीत की जाने वाली जमीनें सामूहिक मालिकाना वाली हैं इस पर किसी का निजी मालिकाना नहीं है जबकि सर्वोच्च न्यायालय अपने फैसले में साफ-साफ कह चुका है कि सामूहिक संपदा के स्वरूप को यथावत बरकरार रखा जाय। लेकिन सामूहिक मालिकाना की जमीन, अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है जैसे – कृषि अर्थव्यवस्था, जल अर्थव्यवस्था, पशुधन, जंगल आधारित अर्थव्यवस्था आदि। आज पूरे देश में बायोफ्यूल बनाने के नाम पर लाखों-करोड़ों एकड़ निस्तार जमीन में जट्रोफा लगाया जा रहा है। अकेले राजस्थान में 60 लाख हेक्टेयर जमीन पर जट्रोफा लगाने की बात कही जा रही है। उसी तरह सामूहिक मालिकाना हक की जमीन को परती जमीन में बदलकर निजी कंपनियों को दिया जा रहा है।

पर्यावरण संरक्षण के लिए सामूहिक मालिकाना हक की जमीन की एक अहम भूमिका है। सामूहिक जल स्रोत के आस-पास की जमीन सामूहिक मालिकाना जमीन होती है यद्यपि जल स्रोत अपने में ही एक सामूहिक मालिकाना के स्रोत हैं। शासन की गलत नीतियों एवं कानूनों के चलते सामूहिक मालिकाना का अहसास लोगों के मन से धीरे-धीरे कम होता चला गया और सामूहिक मालिकाना की संपत्ति पर धीरे-धीरे निजी मालिकाना का कब्जा होता गया है।

सामूहिक मालिकाना पर केन्द्रीय स्तर की नीति का अभाव तो है ही, एक सोच यह है कि जब तक सामूहिक मालिकाना संपत्ति का वार्षिक आडिट वन ऑडिट की तरह नहीं होगा, तब तक सी पी आर को टिकाए रखना कठिन होगा।

भावी राष्ट्रीय आदिवासी नीति में भी आदिवासी अंचल की जमीन सुरक्षित

रखने तथा आदिवासियों के निजी जमीन को संरक्षित करने हेतु कोई विशेष प्रावधान नहीं है।

इन स्थितियों में हमें कुछ सवालों पर गंभीरता से चर्चा करना जरूरी है, जैसे—

- क्या जमीन पर कानूनी मालिकाना शासन के पास रहेगा या उद्योगपति के पास?
- आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यक, छोटे एवं सीमांत किसानों से खेतिहर जमीन लेकर उद्योगपतियों को देने के पीछे नीतिगत आधार क्या है? कृषि भूमि के रूपांतरण की अनुमति का आधार क्या है? खाद्यान्न संकट से इसका कोई रिश्ता है या नहीं? क्या यह खाद्यान्न का व्यापार करने वाले विशालकाय कारपोरेट्स के व्यापार का 'फेसिलिटेशन' नहीं है?
- क्या सीलिंग एक्ट को समाप्त करके जमीन पर नियंत्रण चंद पूंजीपतियों के हाथ में रहेगा या सीलिंग एक्ट लागू करके अतिरिक्त जमीन भूमिहीन जरूरतमंदों को दी जायेगी?
- आज बढ़ती बेरोजगारी, घटते कुल कृषि उत्पादन, और बढ़ती पलायन की दर को देखते हुए 'अनुपस्थित जमींदार' के मुद्दे पर भी विस्तृत रूप से सोचा जाना चाहिए। आज महत्वपूर्ण है कि जमीन के मुद्दे पर हमारी राजनीति क्या हो?
- जमीन कोई बिक्री की वस्तु नहीं है, वह आजीविका के मूलभूत अधिकार का महत्वपूर्ण साधन है। जमीन का मालिकाना, उस पर टिके रहना और उसको Waiver बनाना एक राजनीतिक सवाल है, जिसका हल राजनीतिक ढंग से ही खोजा जा सकता है। एक तथाकथित एनजीओ ने जमीन के मुद्दे पर हस्तक्षेप कर जमीन मालिकाना के समीकरण तथा जमीन के राजनीतिकरण को बड़ा नुकसान पहुंचाया तथा जमीन के मुद्दे को जन आंदोलन में बदलने नहीं दिया। आजीविका के अधिकार के साथ अनाज के अधिकार के समीकरण को राजनीतिक ढंग से समझना एवं राजनीतिक हल खोजना बहुत जरूरी है। आज भारतीय संदर्भ में देखें तो 76 प्रतिशत जमीन 23 प्रतिशत लोगों के हाथ में है, इसलिए जमीन के मुद्दे के साथ अनाज के रिश्ते को अलग करके नहीं देखा जा सकता।

जमीन की लड़ाई को कानूनी संरचना के दायरे से बाहर रखना होगा। आज जो परिस्थिति हमारे सामने रखी जा रही है उसमें गांव के वृक्ष, घर, मवेशी, पानी, स्वास्थ्य, शिक्षा, अधोसंरचना, सभी का बहुत बुरा हाल

है, केवल जो जमीन है उसी से कुछ विकास की संभावनाएं आगे दिखती हैं, बाकी सब बेकार है। इसलिए बाकी चीज को ठीक करने के बजाए जमीन का उपयोग बदलकर उस गांव में न सही पड़ोस के गांव में खुशहाली लायी जा सकती है इसी सोच के आधार पर आज किसान जमीन से बेदखल हो रहे हैं और बेचने पर मजबूर हो रहे हैं।

राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय समझौतों के तहत ही आज बीज कानून, जैव विविधता कानून सहित अन्य तमाम कानूनों को बदला जा रहा है।

इन परिस्थितियों का आकलन किये बिना तथा इन समझौतों पर पैनी नजर रखे बिना जमीन की समस्या का हल नहीं खोजा जा सकता है।

वैश्विक जमीन बाजार में जमीन के उछलते भाव तथा स्थानीय जमीन बाजार में वैश्विक सन्दर्भ का राजनीतिक विश्लेषण किये बिना जमीन का राजनीतिक हल संभव नहीं है इसलिए जल, जंगल, जमीन, खनिज, जल स्रोतों के निजीकरण की प्रक्रिया को चुनौती देने के साथ-साथ व्यापार आधारित जीवन शैली को भी चुनौती देना पड़ेगा और उपभोग एवं पुनरुत्थान के बीच संतुलन लाना पड़ेगा। संसाधनों के निजीकरण पर आधारित विकास आज जनतंत्र की चुनौती है। लोगों के लिए राजनैतिक एवं जनतांत्रिक जगह धीरे-धीरे कम हो रही है।

भूमि अधिग्रहण कानून अगर रहेगा तो इनका स्वरूप क्या रहेगा, यह ज्यादा महत्वपूर्ण है। अगर बाजार का हित साधने के लिए किसी भी ढांचे का निर्माण किया जाता है तो वह कमजोर एवं सीमांत तबके की जनसंख्या को हाशिए में धकेल कर रख देगा। पिछले एक दशक के आंकड़े बताते हैं कि भूमिहीनों की संख्या में वृद्धि हुई है।

नव-आर्थिक उदारवाद के दौरान नये-नये तरीके के भूमि मालिक आज भूमि के बाजार में अपनी उपस्थिति दर्ज किये हुए हैं। उदारवाद के दौर में 'राष्ट्र-राज्य' एवं उसकी तमाम नीतियां, कानून, वैश्विक पूँजी एवं बाजार को मजबूत करने में लगे हुए हैं। ऐसे संवेदनशील समय में 'राष्ट्र-राज्य' द्वारा भूमि अधिग्रहण कानून बनाने की प्रक्रिया को तेजी से चालू करना एक संशय को जन्म देता है, इसलिए अंतर्राष्ट्रीय अनुबंधों से जोड़कर इसे देखना होगा।

बहुत ही संगठित तरीके से आज विभिन्न घटकों द्वारा गैर राजनीतिकरण की प्रक्रिया तेजी से चलाई जा रही है। कोई समूह भूमि अधिग्रहण कानून को

रद्द करने की बात कह रहे थे, कोई समूह इसे बनाये रखने की बात कर रहे थे, कोई समूह आयोग बनाने की बात कर रहे थे, कोई समूह मिली-जुली बातें कर रहे थे, इन सारी परिस्थितियों को गहराई से देखना होगा। लेकिन चाहे निजी जमीन हो या सामूहिक जमीन हो, आम जनता अपनी जमीन पर टिके रहना चाहती है। पिछले वर्षों में देश के विभिन्न हिस्सों में प्रतिरोध एवं प्रतिवाद के माध्यम से जनता ने अपने विचार को राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुँचाया है। इसी संदर्भ में एक महत्वपूर्ण बात यह है कि कुछ गैर जनवादी ताकतें लगातार यह कहने में नहीं थक रही हैं कि भूमि आंदोलन कोई संघर्ष नहीं है, इनके पास कोई विकल्प नहीं है।

भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया में जनता प्रतिरोध एवं प्रतिवाद के स्वर को दबाने के लिए विशेष रूप से सैन्यीकरण की प्रक्रिया को तेज किया जा रहा है तथा जन सुरक्षा कानून जैसे काले कानून बनाये जा रहे हैं, ताकि जनता की आवाज को दबाया जा सके। छत्तीसगढ़ झारखण्ड, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश तथा उत्तर-पूर्व भारत में विभिन्न आदिवासी समुदायों के बीच द्वंद पैदा किया जा रहा है, ताकि सैन्य हस्तक्षेप का माहौल मिल सके।

व्यापक जनमत के इन विद्रोही तेवरों को दबाने तथा लोकतांत्रिक तरीके से चल रहे प्रतिरोधों को दबाने के लिए तमाम दमनकारी कानून इजाद किये जा रहे हैं— छत्तीसगढ़ स्पेशल पब्लिक सेक्योरिटी एक्ट, मध्य प्रदेश स्पेशल एरिया सेक्योरिटी एक्ट, वेस्ट बंगाल प्रिवेंशन आफ क्रिमिनल एक्ट, यू0 पी0 एम0ओ0सी0ए0 आदि।

हकीकत यह है कि अव्यावहारिक तथा अवैज्ञानिक विकास की मौजूदा अवधारणा के द्वारा की गयी पर्यावरणीय क्षति ने सामाजिक अन्याय को बढ़ाया तथा अब एक बार फिर से पर्यावरण संरक्षण के नाम पर सामाजिक अन्याय को बढ़ाया जा रहा है। परंतु 'राज्य' और 'सत्ता' इस सत्य को स्वीकार करने से घबराती हैं और अपनी ही जनता के हितों की कतल को तत्पर हैं।

जब देश में 318 सांसद करोड़पति हों, केन्द्र राज्यों के अधिकारों पर लगातार कब्जा करता जा रहा हो तथा भारत के संघीय ढांचे को कमजोर करता जा रहा हो, देश की सम्प्रभुता को गिरवी रखता जा रहा हो, कल्याणकारी राज्य की अवधारणा से पल्ला झाड़ चुका हो तो भला ऐसी हालत में संसदीय प्रजातन्त्र पर कौन और क्यों विश्वास करेगा?

लेकिन आज भारत समेत दुनिया के उन तमाम निर्धन देशों में लालची

मुनाफाखोरों की प्राकृतिक संसाधनों पर कब्जे की गतिविधियाँ जितनी तेज़ हो रही हैं, उनका विरोध और प्रतिरोध भी उतनी ही तेज़ी के साथ बढ़ता जा रहा है। राष्ट्र-राज्यों की भूमिका की असलियत को जानने परखने के बाद लोगों का संसदों, न्यायपालिकाओं से मोहभंग होता जा रहा है। न्याय पाने की आशा से निराश आदिवासियों, किसानों, भूमिहीनों तथा मज़दूरों को लगने लगा है कि बिना हिंसा के उनकी बात नहीं सुनी जायेगी फलतः यह गुस्सा समय समय पर संगठित हिंसा के साथ ही साथ असंगठित हिंसा के रूप में जगह जगह फूट रहा है। यह उदारवादी एजेण्डे पर काम करने वाले शासकों तथा नियंताओं की तथाकथित लोकतांत्रिक व्यवस्था जिसका आधार मुनाफाखोरी, विवेकहीन उपभोग, प्राकृतिक संसाधनों का तेज़ी के साथ विवेकहीन दोहन और मानव श्रम का न्यूनतम उपयोग है, के प्रति लोगों की पूर्ण असहमति का शंखनाद है।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 (कुछ प्रमुख प्रावधान)

अधिनियम का दायरा

इस अधिनियम के जरिये राज्य/केंद्र सरकार को यह अधिकार प्राप्त हो जाता है कि वह निजी जमीन के मालिकों को मुआवजा देकर उनकी जमीन को अपने स्वामित्व में ले लें।

अधिनियम भूमि अधिग्रहण के उद्देश्य और तौर-तरीकों को भी स्पष्ट करता है। इस कानून के अनुसार जमीन का अधिग्रहण अनिवार्यतः सार्वजनिक उद्देश्यों के लिये ही होना चाहिये, हालांकि इसमें सार्वजनिक उद्देश्यों को परिभाषित नहीं किया गया है।

अधिनियम का इतिहास बताता है कि इसका उदय निजी जमीनों के अधिग्रहण और क्रमशः सार्वजनिक सुविधायें मुहैया कराने के लिये हुआ था। ऐसी सार्वजनिक सुविधाओं के उदाहरण के रूप में मकान, स्कूल, हस्पताल, रेलवे लाईनों के निर्माण को लिया जा सकता है।

समय बीतने के साथ इस अधिनियम में कई संशोधन किये गये और आखिरी संशोधन 1984 में केंद्र सरकार द्वारा किया गया था।

- भूमि अधिग्रहण कानून केंद्र सरकार द्वारा बनाया गया था, लेकिन राज्य भी संविधान के अनुच्छेद 246 के अंतर्गत उसमें संशोधन कर सकते हैं। इसके लिये अनुच्छेद 246 को संविधान के समवर्ती सूची की 7वीं अनुसूची के साथ पढ़ा जाये।

विभिन्न राज्य सरकारों ने अलग-अलग समय पर अधिग्रहण के अधिकार, अधिसूचना प्रकाशित करने के तौर-तरीकों, जिन व्यक्तियों को अधिसूचना भेजी जानी चाहिये, उनके चयन आदि के विषय में कई संशोधन किये हैं।

- मुआवजे का आकलन धारा 4(1) के अंतर्गत जारी की जाने वाली अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के समय प्रचलित दामों पर किया जाना चाहिये।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम का कार्यान्वयन सदा ही विवादों का शिकार रहा है, क्योंकि यह व्यक्ति विशेष के संपत्ति के अधिकार पर चोट करता है और बदले में उसको समुचित पुनर्वास भी नहीं दे पाता है। पूरे देश में गांवों और

छोटे-मोटे कस्बों में अनगिनत लोगों को जमीन से हाथ धोना पड़ा है और उसके बदले में जहां एक ओर उन्हें केवल मामूली मुआवजे दिये गये वहीं दूसरी ओर पुनर्वास की व्यवस्था भी नहीं की गयी। 1984 के संशोधन का मुख्य जोर अधिग्रहण प्रक्रिया के साथ जुड़ी लेट-लतीफी और मुआवजों की अदायगी में अनावश्यक देरी पर लगाम लगाने पर ही रहा है।

यह संशोधन थे—

1. धारा 4(1) के अंतर्गत भूमि अधिग्रहण संबंधी उद्देश्य की घोषणा और धारा 6(1) के तहत अधिग्रहण की घोषणा के बीच तमाम कार्रवाईयों के लिये एक वर्ष की समयावधि निर्धारित कर दी गयी।
2. संशोधन के परिणामस्वरूप यह अनिवार्य है कि धारा 11(1) के तहत कलैक्टर, धारा 6(1) के अंतर्गत अधिग्रहण की घोषणा के पश्चात दो वर्ष के भीतर निर्णय सुना दिया जाये।
3. धारा 4(1) के तहत नोटिस जारी होने की तारीख के बाद रकम के भुगतान में जितना भी समय लगेगा, उस अवधि के लिये धारा 23(1A) के तहत रकम पर 12 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज भी दिया जायेगा।
4. धारा 23(2) में संशोधन के अनुसार अब अधिग्रहित जमीन के बाजार मूल्य के 30 प्रतिशत के बराबर सांत्वना राशि दी जायेगी। संशोधन से पहले यह राशि 15 प्रतिशत थी। इस सांत्वना राशि का प्रावधान किसी भी प्रकार के नुकसान, पीड़ा या दुखद भावनाओं की भरपाई के लिये किया गया है।
5. धारा 28-ए के अंतर्गत संशोधन, उन लोगों को अपनी जमीन के पुनर्मूल्यांकन के लिये आवेदन का एक और अवसर उपलब्ध कराता है, जो कलैक्टर के द्वारा दिये गये निर्णय से संतुष्ट नहीं हैं। लेकिन संशोधन अधिनियम ने सरकार की विवेकाधीन शक्तियों में और इजाफा किया है और साथ ही कम्पनियों द्वारा भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया को सरल भी बना दिया है।

भूमि अधिग्रहण कानून के अलावा भी सरकार विशेष कार्यों के लिये जमीन का अधिग्रहण कर सकती है। मिसाल के तौर पर, सरकार उद्योगों के नियोजित विकास, झोपड़ पट्टियों के पुनर्वास, शहरी विकास, आवासीय योजनाओं आदि के लिये जमीन का अधिग्रहण कर सकती है। इस प्रकार के अधिग्रहणों के लिये निम्न संबंधित कानूनों का सहारा लिया जाता है—

1. वन अधिनियम 1927
2. कोयला उत्पादक क्षेत्र (अधिग्रहण एवं विकास) अधिनियम 1957

3. झोपड़ पट्टी क्षेत्र (सुधार एवं पुनर्वास) अधिनियम 1956
4. दिल्ली विकास अधिनियम 1957
5. सोसायटी पंजीकरण अधिनियम 1860
6. महाराष्ट्र औद्योगिक विकास अधिनियम 1961

अधिनियम के अंतर्गत अधिग्रहण की प्रक्रिया को चार भागों में बांटा जा सकता है—

1. प्रारंभिक जाँच/सूचना, धारा—4, 5, 5ए

- (i) धारा 4 (1) के अंतर्गत सरकार द्वारा अपने आधिकारिक गजट में एक प्रारंभिक अधिसूचना जारी की जायेगी कि संबंधित गांव या शहर में कोई विशेष जमीन सार्वजनिक उद्देश्य या किसी कम्पनी के लिये आवश्यक है, इस आशय की सूचना कम से कम दो समाचार पत्रों (जिसमें से एक स्थानीय भाषा में हों) में भी प्रकाशित किया जाना चाहिए। इसके साथ-साथ इसके बारे में सूचना सार्वजनिक स्थल पर चस्पा भी की जाएगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि जमीन निश्चित रूप से अधिग्रहित की जाने वाली है। इससे सरकार को जमीन के सर्वे का अवसर भर मिल जाता है। मुआवजे की गणना इस अधिसूचना के प्रकाशन के अंतिम दिन से शुरू की जायेगी। इसे 1984 के संशोधन में शामिल किया गया था। अधिसूचना उस सार्वजनिक उद्देश्य के विषय में जानकारी देने के लिये आवश्यक है, जिसके लिये जमीन की जरूरत है।
- (ii) धारा 4(2) अधिकृत पदाधिकारियों को ऐसी जमीन के सर्वे उसे खोदने/मापने आदि के लिये प्रस्तावित जमीन में प्रवेश करने का अधिकार देती है। वह अधिकारी, इस दिशा में जांच के लिये भी उपयुक्त कदम उठा सकते हैं कि जिस कार्य के लिये भूमि अधिग्रहण प्रस्तावित है वह जमीन उस कार्य के लिये उपयुक्त है भी या नहीं।
- (iii) धारा 5(ए) के तहत, नोटिस जारी होने की तारीख से 30 दिन के भीतर किसी भी प्रकार की आपत्तियों को लिखित रूप में कलैक्टर के सामने उठाया जा सकता है। अधिग्रहण से असंतुष्ट लोगों की सुनवाई और आगे जांच की जिम्मेदारी कलैक्टर की है। इसके बाद कलैक्टर सिफा. रिशों के साथ अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंप देता है। इसके पश्चात सरकार का निर्णय अंतिम माना जायेगा और उसे अदालत में चुनौती नहीं दी जा सकती है, लेकिन कई बार ऐसे मामले भी प्रकाश में आये हैं, जहां कलैक्टर जमीन के प्रयोग के विषय में समुचित जानकारी उपलब्ध कराने में विफल रहा है, ऐसे मामले में व्यक्ति उच्च न्यायालय

में रिट याचिका दायर कर सकता है।

इस धारा के अंतर्गत भूस्वामियों, बटाईदारों, सूदखोरों के शिकार तथा अन्य लाभान्वितों को आपत्ति उठाने का अधिकार है। उच्चतम न्यायालय की भी यही प्रस्थापना है कि कलैक्टर की रिपोर्ट का जांच से संबंधित सभी व्यक्तियों व पक्षों को उपलब्ध कराया जाना आवश्यक है।

2. अधिग्रहण की योजना की घोषणा, धारा 6—8

(i) कलैक्टर के द्वारा आपत्तियों को सुनने के बाद और तदुपरान्त अपनी संस्तुति देने के बाद सरकार धारा 6(1) के अंतर्गत घोषणा करती है कि संबंधित जमीन का अधिग्रहण किया जाने वाला है। इस धारा में घोषणा का प्रकाशन भी उसी प्रकार किया जाना निर्धारित किया गया है जिस प्रकार धारा 4(1) के अंतर्गत अधिसूचना का किया जाता है। घोषणा में, भूमि अधिग्रहण का विवरण, सार्वजनिक उद्देश्य, यदि अधिग्रहण कम्पनी के द्वारा या कम्पनी के लिये किया जा रहा है तो कम्पनी के विषय में सूचना, अधिग्रहित की गयी जमीन की योजना का विवरण और योजना कब तक उपलब्ध हो जायेगी, आदि का ब्यौरा देना आवश्यक होता है। सरकार चाहे तो एक अधिसूचना में उल्लिखित जमीन के बारे में कई घोषणायें भी कर सकती है लेकिन ऐसी सभी घोषणायें एक वर्ष की अवधि के भीतर ही होनी चाहिये।

रामचन्द्र बनाम भारत सरकार, 1994 एस सी सी 4 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया था कि 5ए और 6 के साथ जुड़ने पर धारा 4 का आशय है कि धारा 4, योजना के अंतर्गत जमीन को चिन्हित करती है, और उसके बाद उस जमीन का सर्वेक्षण व नक्शे तैयार करने की दिशा में बढ़ा जा सकता है। इसके साथ ही इस विषय में भी विचार किया जाता है कि विभिन्न संबंधित व्यक्तियों की आपत्तियों के बाद जिस उद्देश्य के लिये जमीन का अधिग्रहण किया जा रहा है वह उचित है या नहीं और इसके बाद ही सरकार अंतिम रूप से निर्णय लेती है जिसके उपरांत जमीन विशेष का उल्लेख करते हुए धारा 6 के तहत घोषणा प्रकाशित की जाती है। घोषणा हो जाने के बाद फौरन ही धारा 6 के तहत उसे व्यापक रूप से प्रकाशित कर दिया जाता है। धारा 6 के अंतर्गत घोषणा होते ही, अधिसूचना में उल्लिखित क्षेत्र के बाहर की जमीन स्वतः ही मुक्त हो जायगी।

3. संबंधित व्यक्तियों को नोटिस, जांच व कलैक्टर द्वारा निर्णय, धारा 9—16

धारा 9 के अंतर्गत, कलैक्टर को अधिग्रहित की जाने वाली जमीन से संबंधित

व्यक्तियों को नोटिस भेजना अनिवार्य है। इस नोटिस के बाद संबंधित व्यक्तियों को अपने मुआवजे का दावा प्रस्तुत करने या जमीन की नाप वगैरह के सिलसिले में आपत्तियां उठाने के लिये, नोटिस जारी होने के 15 दिन के बाद कलैक्टर से मिलकर बात करनी होती है। धारा 11 के तहत यह कलैक्टर का दायित्व है कि वह जमीन के विषय में सभी दावों और आपत्तियों की विस्तारपूर्वक जांच करें। धारा 11ए के अंतर्गत कलैक्टर को, सरकार द्वारा स्वीकृति के बाद, घोषणा के प्रकाशन की तारीख के बाद 2 साल के भीतर अपना निर्णय देना होता है। घोषणा के विषय में संबंधित व्यक्तियों को सूचित करना आवश्यक होता है। 1984 के संशोधन अधिनियम के अनुसार धारा 4(1) के अंतर्गत अधिसूचना और धारा 11 के तहत कलैक्टर के निर्णय के बीच तीन साल से अधिक समय नहीं लगना चाहिये। संशोधन में धारा 13ए को भी शामिल किया गया है जिसके आधार पर आप निर्णय के छः माह के भीतर महत्वपूर्ण या गणना संबंधी त्रुटियों के बारे में अधिसूचना जारी करवाने के लिये आवेदन प्रस्तुत कर सकते हैं।

अधिनियम, कलैक्टर के निर्णय से असंतुष्ट व्यक्तियों के लिये कानूनी सहायता का भी प्रावधान करता है। असंतुष्ट पक्षों को निर्णय के विषय में जिस दिन पता चलता है, वह उसके छः सप्ताह के भीतर, धारा 18(2)(ए) के अंतर्गत जिला न्यायालय में वाद दाखिल कर सकते हैं। यह आवेदन केवल वही लोग कर सकते हैं, जो संबंधित हैं और जिन्होंने निर्णय को स्वीकार नहीं किया है या उसे असहमति के साथ स्वीकार किया है। प्रेमराज बनाम भारत सरकार (1992)3 एस सी सी 40 के मामले में सुप्रीम कोर्ट ने प्रस्थापना दी थी कि ऐसे आवेदन दाखिल किये जाने के तीन माह के भीतर कलैक्टर द्वारा न्यायालय को भेजे जायें।

4. कब्जा लेना, (धारा 16):

कलैक्टर द्वारा निर्णय दे दिये जाने के बाद वह जमीन को अपने कब्जे में ले सकता है, भले ही इस संदर्भ में कोई भुगतान किया गया हो या नहीं। अधिनियम में मुआवजे की रकम के भुगतान के बारे में कोई विशेष समय सीमा निर्धारित नहीं की गयी है।

धारा 17 के अंतर्गत सरकार के पास अधिकार है कि वह अत्यावश्यकता की स्थिति में कलैक्टर के निर्णय से भी पहले ही, जमीन का अधिग्रहण कर सकती है।

मुआवजा

धारा 23 में कुछ विशेष स्थितियों को लिया गया है जिन्हें मुआवजे के विषय में फ़ैसला लेते हुए ध्यान में रखना आवश्यक है।

- जमीन का वास्तविक और संभावित प्रयोग
- खड़ी फसलें और पेड़
- शेष जमीन से अलगाव/विभाजन से क्षति
- अन्य संपत्तियों को क्षति
- अधिग्रहण के फलस्वरूप, आवास या व्यवसाय के स्थान में आने वाले बदलावों के खर्चे
- जमीन से लाभ में कमी के कारण होने वाली क्षति।

ठीक उसी तरह धारा 24 के तहत मुआवजे के आकलन के दौरान कुछ कतिपय परिस्थितियों को मुआवजे के आकलन से बाहर रखा गया है। अगर कोई व्यक्ति या जमीन का मालिक मुआवजे की राशि से संतुष्ट नहीं है तो वह व्यक्ति कलैक्टर को इस मामले को संबंधित न्यायालय को प्रेषित करने के लिए आवेदन कर सकता है। अगर कलैक्टर इस आवेदन को न्यायालय को प्रेषित नहीं करता है तो संबंधित व्यक्ति उच्च न्यायालय में रिट याचिका सीधे दायर कर सकता है। यहां यह जानना आवश्यक है कि मुआवजे की राशि को लेने के बाद भी याचिका पर पुनर्विचार की अर्जी लगाई जा सकती है।

लेकिन उसमें इस बात का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए कि मुआवजा राशि व्यक्ति ने विरोध दर्शाते हुए लिया है। अधिनियम के क्षेत्राधिकार से स्पष्ट है कि यह अधिनियम सरकार को अधिकार देता है कि सार्वजनिक उद्देश्यों के लिये जमीन का अधिग्रहण कर सकती है लेकिन उसमें सार्वजनिक उद्देश्य को परिभाषित नहीं किया गया है। संबंधित गैरसरकारी पक्षों को कोई अधिकार नहीं दिये गये हैं, अधिग्रहण को रोकने के सिलसिले में, व्यक्ति आपत्तियां उठाने के जरिये महज उसे टाल सकता है। अधिनियम के अंतर्गत, कलैक्टर के परामर्श पर अदालत इस प्रकार के मामलों को ले सकती है लेकिन उसे भी पूरे मामले की विस्तृत सुनवाई का अधिकार नहीं है, वह केवल कलैक्टर को आदेश भर दे सकती है कि वह असंतुष्ट पक्षों की आपत्तियों पर पर्याप्त ध्यान दे। आपात स्थिति में सरकार मुआवजे का भुगतान किये बिना भी जमीन का अधिग्रहण कर सकती है और ऐसे में स्वयं न्यायालय भी आपात स्थिति या अत्यावश्यकता पर प्रश्न उठाने के अधिकारी नहीं हैं। निस्संदेह संशोधन अधिनियम, 1984 ने भूस्वामियों को कुछ राहत तो दी है लेकिन इससे सरकार की शक्तियों में भी इजाफा हुआ है। अब जमीन का अधिग्रहण किसी सार्वजनिक निगम द्वारा भी किया जा सकता है, मानो वह सार्वजनिक उद्देश्य

के लिये हो। धारा 4 और 6 के बीच तीन वर्ष की अधिकतम समय सीमा निर्धारित कर दिये जाने से भूस्वामियों को राहत मिली है। सांत्वना राशि 15 प्रतिशत से बढ़ाकर 30 प्रतिशत कर दी गयी है और आपात अधिग्रहण की स्थिति में, मुआवजे का 80 प्रतिशत अंश तत्काल अदा किया जाना आवश्यक है। संशोधन यह भी सुविधा देता है कि यदि एक व्यक्ति अदालत के माध्यम से अपना मुआवजा बढ़वा लेता है तो उस आदेश का सहारा लेकर दूसरे व्यक्ति भी अपनी राशि बढ़वा सकते हैं, किन्तु अधिनियम में मुआवजे की राशि के दिए जाने के बारे में कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है।

संशोधन अधिनियम ने कुल मिलाकर, भूमि अधिग्रहण के विषय में राज्य की शक्तियों को बढ़ाया ही है। अधिनियम साफ तौर पर संपन्न वर्ग के पक्ष में है, जो सार्वजनिक उद्देश्य के नाम पर मिट्टी के मोल जमीनें खरीद कर मकान, दुकान, क्लब और होटल जैसे निर्माण करते हुए बेहिसाब कमाई कर सकता है। अधिनियम साफ तौर पर जन विरोधी है, क्योंकि आम आदमी को अपने वैध हकों के लिये साल-दर-साल लड़ना पड़ता है और उसके बाद भी वह राहत और सम्मानजनक भरण-पोषण की आशा नहीं रख सकता है।

5. सार्वजनिक उद्देश्य (भूमि-अधिग्रहण अधिनियम की दृष्टि में)

भूमि अधिग्रहण की दृष्टि में भूमि अधिग्रहण अधिनियम हमारे देश के सबसे पुराने और सबसे शुरूआती कानूनों में से एक है। भूमि अधिग्रहण अधिनियम की विषयवस्तु और औचित्य संबंधी वक्तव्य के अनुसार सार्वजनिक कल्याण और आर्थिक विकास के क्षेत्र में सरकार की चिंतायें सर्वोपरि हैं और इसलिये आवश्यकता पड़ने पर भूमि अधिग्रहण अपरिहार्य है। वक्तव्य और आगे जाकर स्पष्ट करता है कि सार्वजनिक कल्याण को बढ़ावा देने के साथ-साथ उस व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा भी की जानी चाहिये जिसकी जमीन उपरोक्त कल्याण कार्यों के लिये अधिग्रहित की जा रही है, क्योंकि उसकी भूमि के अधिग्रहण की स्थिति में वह अपने आजीविका के साधनों से वंचित हो जाता है।

आगे कहा गया है कि निजी उद्यम के लिये भूमि अधिग्रहण को प्राथमिकता के लिहाज से सार्वजनिक उद्देश्य के समकक्ष नहीं रखा जा सकता है। दरअसल 1984 में इन्हीं कारणों को अधिनियम में संशोधन की वजह के रूप में रखा गया था। किन्तु जब हम भूमि अधिग्रहण से जुड़े अनगिनत विवादों के फैसलों पर नजर डालते हैं, और कि राज्य ने भूमि अधिग्रहण के लिये कैसा रवैया अख्तियार किया है तो पता चलता है कि इस वक्तव्य की पवित्रता महज एक कागजी जमा-खर्च से ज्यादा कुछ भी नहीं है और इसको अमली

जामा पहनाने की कोई संजीदा कोशिशें की ही नहीं गयी हैं।

भूमि अधिग्रहण की अवधारणा मूल रूप से इस मान्यता की उपज है कि सारी जमीन अंततः राज्य की संपत्ति है। अपने देश की सीमाओं के भीतर पड़ने वाली सारी जमीन राज्य की मिल्कियत है। इसलिये जमीन के वर्तमान और भावी प्रयोग के बारे में फैसला करने की अंतिम शक्ति राज्य के हाथों में ही निहित है। जहां एक तरफ जमीन के विकास और रखरखाव के लिये एक समान व्यवस्था के विकास के लिहाज से यह अवधारणा एक हद तक आवश्यक है वहीं इसमें भी कोई शक नहीं है कि राज्य के शासक समूह का एक हिस्सा इस प्रकार राज्य स्वामित्व के नाम पर अपने स्वार्थों की पूर्ति भी करता है। यह संभवतः एक लोकतांत्रिक व्यवस्था की देन है जिसमें सभी प्रकार की संपत्तियों को सभी लोगों की मिल्कियत मान लिया जाता है।

अधिनियम की धारा 6 की भाषा

6. सार्वजनिक उद्देश्य के लिये जमीन की आवश्यकता संबंधी विज्ञप्ति—

1. इस अधिनियम के भाग VII के अधीन, जब संबंधित सरकार द्वारा यदि धारा 5—ए, उपधारा (2) के तहत कोई रिपोर्ट तैयार की गई है तो उस को पढ़ कर इस विषय में संतुष्ट हो जाती है कि कोई जमीन किसी सार्वजनिक उद्देश्य या किसी कम्पनी के लिये आवश्यक है तो इस विषय में एक विज्ञप्ति जारी की जाती है। इस विज्ञप्ति पर संबंधित सरकार के सचिव या सरकार के आदेशों के अनुपालन के लिये नियुक्त किसी अधिकारी के हस्ताक्षर होंगे। इसके अतिरिक्त समय—समय पर जमीन के विभिन्न हिस्सों के लिये नयी विज्ञप्तियां जारी की जा सकती हैं जो धारा 4, उपधारा (1) के तहत दी गयी अधिसूचना पर ही आधारित हो सकती हैं और इस विषय में इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि धारा 5—ए, उपधारा (2) के तहत भिन्न रिपोर्टें तैयार की गयी हैं या नहीं।

यदि धारा 4, उपधारा (1) के तहत अधिसूचित किसी विशेष जमीन के लिये कोई विज्ञप्ति जारी नहीं की गयी है तो;

- (i) भूमि अधिग्रहण (संशोधन एवं वैधीकरण) अध्यादेश, 1967 के शुरु होने के बाद लेकिन भूमि अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम, 1984 के शुरु होने के पहले विज्ञप्ति जारी न होने की स्थिति में अगली विज्ञप्ति अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के तीन साल समाप्त होने पर ही जारी की जा सकती है।

(ii) यदि भूमि अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम 1984 के प्रारंभ होने के बाद प्रकाशित की गयी है तो विज्ञप्ति, अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के एक वर्ष बाद ही जारी की जा सकती है।

इसके बाद ऐसी संपत्ति के विषय में तब तक कोई अन्य घोषणा नहीं की जा सकती है जब तक कम्पनी के सेस या सार्वजनिक राजस्व से उसका मुआवजा अदा नहीं कर दिया जाये।

स्पष्टीकरण-1

प्रथम उपबन्ध में उल्लिखित अवधि की गणना में वह समय शामिल नहीं होगा जिस दौरान धारा 4, उपधारा (1) के तहत जारी की गयी अधिसूचना के कार्यान्वयन से संबंधित कोई भी कार्य अदालती आदेश से स्थगित रहता है।

स्पष्टीकरण-2

1. जहां संपत्ति के एवज में मुआवजे का भुगतान किसी ऐसे निगम के सेस से किया जाता है जो या तो राज्य के स्वामित्व में है या नियंत्रण में है तो ऐसे मुआवजे को सार्वजनिक राजस्व से अदा किया गया भुगतान माना जायेगा।
2. प्रत्येक विज्ञप्ति आधिकारिक गज़ेट में प्रकाशित की जायेगी। इसके अलावा विज्ञप्ति को उस क्षेत्र के कम से कम दो समाचार पत्रों में भी प्रकाशित किया जायेगा, जिसमें संबंधित जमीन स्थित है। इन अखबारों में से कम से कम एक का स्थानीय भाषा में होना आवश्यक है। इस विज्ञप्ति में दी गयी सूचना के विषय में सार्वजनिक सूचना को संबंधित क्षेत्र के उपयुक्त स्थानों तक पहुंचाने की जिम्मेदारी कलैक्टर के ऊपर रहेगी (आगे से इस प्रकार के प्रकाशन या सार्वजनिक सूचना पहुंचाने की अंतिम तारीख को विज्ञप्ति के प्रकाशन की तारीख माना जाये)। उस विज्ञप्ति में उस जिले और भौगोलिक पृष्ठभूमि की जानकारी दी जायेगी, जहां जमीन के विषय में योजनायें बनायी जानी हैं। विशेष मामलों में, उन स्थानों के बारे में जानकारी दी जायेगी जहां ऐसी योजनाओं की जांच-पड़ताल की जा सकती है।
3. उपरोक्त विज्ञप्ति इस बात का परिपक्व साक्ष्य होगा कि जमीन वस्तुतः सार्वजनिक उद्देश्य के लिये आवश्यक है, और ऐसी विज्ञप्ति के प्रकाशन के बाद संबंधित सरकार उपयुक्त विधि से जमीन का अधिग्रहण कर सकती है।

इस धारा के विषय में लगभग सभी राज्यों ने संशोधन किये हैं। इस प्रकार

के तमाम संशोधनों में केवल आन्ध्र प्रदेश सरकार द्वारा किया गया संशोधन ही उल्लेखनीय है, क्योंकि उसमें सार्वजनिक उद्देश्य के मूल आशय को समझा और राज्य अधिनियम में समाहित किया गया है।

आन्ध्र प्रदेश के संशोधन में, उपरोक्त धारा में केवल वही मामले शामिल किये गये हैं जहां जमीन की आवश्यकता गरीबों के लिये आवासीय सुविधाओं के निर्माण, विस्तार या सुधार के लिये है।

अलग-अलग विज्ञप्तियों का जारी होना भी अनेक विवादों का स्रोत रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने 1966 में व्यवस्था दी थी कि जमीन के अधिग्रहण के विषय में जो मूल उद्देश्य निर्धारित किया गया था, उस उद्देश्य को बदलना गैरकानूनी है। इस फैसले के बाद बड़ी संख्या में अधिग्रहणों को रोक देना पड़ा, क्योंकि सरकार बार-बार अपने उद्देश्य में बदलाव करती रहती थी। इस स्थिति से निपटने के लिये 1967 में राज्य की तरफ से एक संशोधन किया गया, और नतीजतन अधिनियम की मौजूदा रूपरेखा में विज्ञप्ति को उसके प्रकाशन के तीन वर्ष की अवधि में ही बदला जा सकता है।

इस सिलसिले में सुप्रीम कोर्ट का रवैया काफी व्यापक और विभिन्नतापूर्ण रहा है। दरअसल 1985 के बाद कई ऐसे निर्णय आये हैं जिन्होंने सार्वजनिक उद्देश्य की परिभाषा में इतने प्रकार के नये क्षेत्रों को शामिल कर दिया है कि अब राज्य द्वारा लगभग किसी भी प्रकार की जमीन का किसी भी उद्देश्य के लिये अधिग्रहण वैध दिखायी देने लगा है। ऐसे भी कई मामले रहे हैं जहां सुप्रीम कोर्ट ने सरकार को अपना उद्देश्य बदलने की छूट दे दी।

सार्वजनिक उद्देश्य के विषय में सुप्रीम कोर्ट : 1985-2000

आर्थिक रूप से कमजोर तबकों के लिये आवास उपलब्ध कराने के उद्देश्य से किया जाने वाला अधिग्रहण सार्वजनिक उद्देश्य की श्रेणी में आता है। तदनुसार राज्य गजेट में धारा 4(1) के तहत विज्ञप्ति का प्रकाशन कानूनी और वैध है। इस संदर्भ में धारा 6 के तहत भी एक विज्ञप्ति जारी की गयी है, जिससे सार्वजनिक उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है कि जमीन की आवश्यकता सार्वजनिक उद्देश्य के लिए कॉलोनी के निर्माण और विकास के लिये है।

चंद्रावती देवी बनाम हरियाणा राज्य (1995, पूरक (2) एस सी सी 54)

लोगों के लिये बेहतर जीवन परिस्थितियां सुलभ कराने के उद्देश्य से आवासीय सुविधायें मुहैया कराना एक अत्यंत महत्वपूर्ण सार्वजनिक उद्देश्य है और इस मामले में अधिग्रहण प्रशासन के सामने अधिनियम के तहत अपना दृष्टिकोण

निर्मित करने के लिये पर्याप्त साधन उपलब्ध थे।

दानकुनी आवासीय परियोजना पर एक नजर डालना भी प्रासंगिक रहेगा। कहा गया है कि दानकुनी नामक स्थान कलकत्ता शहर के साथ सड़क व रेलमार्ग के जरिये भली-भांति जुड़ा हुआ है। यह स्थान शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों के दायरे में आता है। पश्चिम बंगाल हाउसिंग बोर्ड ने तय किया कि पश्चिम बंगाल के शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में आवासीय परियोजना पर काम किया जाये। दानकुनी के सिलसिले में हाउसिंग बोर्ड की योजना थी कि वहां मूजा मनोहरपुर में समाज के कमजोर तबकों के लिये 1100 आवासीय इकाईयां निर्मित की जायें, जिसमें एक बाजार, डॉक्टर के क्लिनिक, सड़कों और नालियों आदि की भी व्यवस्था हो। इससे परियोजना के दायरे में आने वाले 6000 निवासियों की आवश्यकताओं की पूर्ति की जानी थी। राज्य सरकार ने इस संदर्भ में 21.41 एकड़ जमीन के अधिग्रहण को मंजूरी दे दी। इसी जमीन में विवादित जमीन भी शामिल है। आगे जानकारी दी गयी है कि 1983 से 1994 के बीच उच्चन्यायालय में रिट याचिकाओं की सुनवाई के दौरान निर्माण कार्य रुक-रुक कर चलता रहा।

पश्चिम बंगाल हाउसिंग बोर्ड बनाम भंवर लाल मूँधड़ा (1997(6)एस सी सी 151)

सुप्रीम कोर्ट में उठाया गया एक और प्रश्न संविधान के अनुच्छेद 300ए में सरकार की भूमि अधिग्रहण संबंधी शक्तियों के विरुद्ध अधिकारों के विषय में था। इस संदर्भ में सुप्रीम कोर्ट का विचार था कि—

“अनुच्छेद 300—ए में प्रयुक्त शब्द “संपत्ति” को राज्य की संप्रभु शक्तियों के कार्यान्वयन व अधिग्रहित संपत्ति के संदर्भ में समझा जाना चाहिए। ‘एक व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित करने’ इस वाक्यांश को भी उस केस की स्थिति के संदर्भ में ही देखा जाना चाहिये। वंचना शब्द कई अवधारणाओं को स्पष्ट करता है। अधिग्रहण या मांगने पर दे देने या किसी सार्वजनिक उद्देश्य के लिये संपत्ति पर कब्जा कर लेना— यह सभी विचार वंचना से जुड़े हैं। अनुच्छेद 300—ए निजी संपत्ति के ऐसे अधिग्रहण या हस्तगतकरण से संबंधित है जो कानून के अनुसार अनिवार्यतः सार्वजनिक उद्देश्य के लिये किया जा रहा हो। अनुच्छेद 300ए में प्रयुक्त “कानून” संसद या विधान सभा द्वारा पारित अधिनियम अथवा कानून की शक्तियों से लैस कोई नियम या वैधानिक आदेश ही होना चाहिये। संपत्ति से वंचित करने का कार्य कानून के द्वारा ही किया जा सकता है फिर भले ही वह संसद द्वारा पारित अधिनियम का अंग हो या विधानसभा द्वारा पारित अधिनियम का, तथा कोई भी अन्य प्रशासनिक आदेश

इस विषय में अपर्याप्त होगा। प्रत्येक संप्रभु राज्य के विशिष्ट अधिकार क्षेत्र में स्वामी की सहमति के बिना भी संपत्ति के अधिग्रहण का अधिकार निहित है। प्रथम दृष्टया, कोई उद्देश्य सार्वजनिक उद्देश्य है या नहीं, इस विषय में राज्य निर्णय ले सकता है। लेकिन वह एकमात्र निर्णायक अधिकारी नहीं है। उसका निर्णय भी न्यायिक समीक्षा के अधीन होगा और कोई उद्देश्य वास्तव में सार्वजनिक उद्देश्य है या नहीं इस विषय में समीक्षा करना न्यायालय का दायित्व है। सार्वजनिक हित का विचार सार्वजनिक उद्देश्य के विषय में हमेशा ही एक महत्वपूर्ण तत्व रहा है। लेकिन प्रत्येक सार्वजनिक उद्देश्य अनुच्छेद 300ए के तहत नहीं आता है। सामान्य शब्दों में, सार्वजनिक स्वास्थ्य की देखरेख या जीवन एवं संपत्ति की क्षति को रोकने को सार्वजनिक उद्देश्य के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। इसके बावजूद ऐसे सभी उद्देश्यों के लिए संपत्ति का हस्तगतकरण या अधिग्रहण अनुच्छेद 300ए के दायरे में नहीं आता है। ऐसा राज्य की पुलिस शक्ति के प्रयोग की स्थिति में ही हो सकता है। दूसरे शब्दों में अनुच्छेद 300ए राज्य की शक्तियों पर अंकुश ही लगाता है कि किसी भी व्यक्ति को कानून के अलावा और किसी भी माध्यम से उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जा सकता है। कानून की सहमति के बिना कोई हस्तगतकरण वैध नहीं है। किसी भी अन्य प्रकार से किया गया हस्तगतकरण या कब्जा अनुच्छेद 300ए के तहत नहीं आता है। यदि किसी कानून का प्रयोग नहीं किया गया है तो कोई हस्तगतकरण नहीं हो सकता है। खान, खनिजों व खदान का अधिग्रहण अनुच्छेद 300ए के दायरे में आता है।

राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों में जैसे कल्याणकारी राज्य की कल्पना की गयी है, उसमें प्रत्येक व्यक्ति को न्यूनतम भौतिक सुविधाओं, मसलन भोजन, वस्त्र व उपयुक्त आवास की व्यवस्था एक पूर्व शर्त है। जीवन स्तर में इजाफा मौजूदा या फैलते भौतिक संसाधनों व वैज्ञानिक ज्ञान आदि के माध्यम से ही हो सकता है और राज्य का यह अधिकार व कर्तव्य है कि यदि निजी प्रयास विफल हो जाते हैं तो स्थिति को संभालने के लिये वह उचित कदम उठाये। एक लोकतांत्रिक समाज में, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सुविधाओं और संग्रह की सुरक्षा के लिये कानूनी संरक्षण की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार व्यापक कल्याण के लिये आवश्यक है कि व्यक्तिगत हितों को सामाजिक इंजीनियरिंग के तौर पर, कानून की सहायता से सामाजिक हितों के साथ तालमेल में रखा जाये जिसका अभिप्राय है कि उस संपत्ति पर सार्वजनिक अंकुश लगाया जाये, जो संपत्ति द्वारा मिलने वाले लाभों को विकृत करती है। संपत्ति के प्रयोग पर अंकुश, राष्ट्र की प्रमुख परिसंपत्तियों पर अर्द्धसहकारी

निजी नियंत्रण का माध्यम है। इस प्रकार संपत्ति नियमन के अधीन आती है। नीति निर्देशक सिद्धांत राज्य द्वारा कानून व प्रशासनिक व्यवस्था के जरिये आर्थिक व्यवस्था के पुर्नसंयोजन को सुगम बनाते हैं तथा मूलभूत अधिकार जीवन को सार्थक बनाने, अवसरों की समानता सुनिश्चित करने व व्यक्ति की हैसियत सम्मान को स्थापित करने के उद्देश्य के संदर्भ में एक उपयुक्त साधन हैं। नीति निर्देशक सिद्धांत और मूलभूत अधिकार सामाजिक व आर्थिक लोकतंत्र को वास्तविक रूप देने वाले रथ के दो पहियों की तरह हैं।

जब राज्य अपनी प्रशासनिक शक्तियों के सहारे निजी संपत्ति का अधिग्रहण करता है तो वह अधिग्रहण भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 या ऐसे ही राज्य कानूनों के आधार पर होता है। हालांकि इस प्रकार किया जाने वाला अधिग्रहण सार्वजनिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये होता है लेकिन संबंधित अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के अनुसार तात्कालिक बाजार कीमतों के आधार पर मुआवजे की अदायगी अनिवार्य है। लेकिन, जब राज्य अपने विशिष्ट अधिकार क्षेत्र की शक्तियों का प्रयोग करते हुए अनुच्छेद 300ए के तहत, यदि संविधान में दिये गये नीति निर्देशक सिद्धांतों को आगे बढ़ाने के लिये किसी नागरिक की संपत्ति को अधिग्रहित करता है या मांगता है या हस्तगत कर लेता है तो उस स्थिति में संपत्ति के मालिक को संपत्ति के मूल्य के बराबर मुआवजा देने का पैमाना लागू नहीं होता है। विधायिका के पास कानून के तहत सार्वजनिक उद्देश्य के लिये निहित कार्यक्षेत्र है। इस प्रकार के भुगतान के लिये या तो कानून एक राशि निर्धारित कर सकता है या उसके निर्धारण के लिये दिये गये सिद्धांतों का प्रयोग किया जा सकता है और इस प्रकार निर्धारित होने वाली राशि उपरोक्त मानक के अनुसार निर्धारित होने वाली राशि के अनुरूप हो ऐसा आवश्यक नहीं है। लेकिन जबकि अनुच्छेद 31(2) को पूरी तरह निरस्त किया जा चुका हो तब न्यायिक व्याख्या को अनुच्छेद 300ए के तहत संपत्ति के हस्तगतकरण के मामले में, मुआवजे की अवधारणा को पुनर्जीवित करने का उपकरण नहीं बनाया जा सकता है। इसके फलस्वरूप अनिवार्य निष्कर्ष यह निकलता है कि अनुच्छेद 300ए के तहत संपत्ति के अधिग्रहण या हस्तगतकरण की स्थिति में मुआवजे के भुगतान का प्रश्न अनावश्यक हो जाता है।

जिलू भाई नंदभाई खचर व अन्य बनाम गुजरात राज्य व अन्य (1995, पूरक (1) एस सी सी 596)

धारा 6 को धारा 4 के साथ पढ़े जाने पर। धारा 4 व 6 के तहत जारी की गयी अधिसूचनाओं में उल्लिखित विभिन्न सार्वजनिक उद्देश्यों का आशय

अलग-अलग है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्रशासनिक अधिकारियों ने विवेक का इस्तेमाल नहीं किया है जिसके चलते अधिसूचना के साथ-साथ अधिग्रहण प्रक्रिया भी विकृत हुई है। इसके अतिरिक्त, विवादित अधिसूचना अस्पष्ट थी और अधिनियम की अनिवार्य आवश्यकता का अनुकरण नहीं किया गया था। अधिग्रहण की प्रक्रिया धारा 4 के तहत अधिसूचना के साथ शुरू होती है और यहां तक कि अतिशीघ्रता की स्थिति में भी धारा 4 के तहत अधिसूचना का जारी होना एक आवश्यक पूर्वावस्था है। इसका उद्देश्य प्रथमतः तो सार्वजनिक घोषणा और सार्वजनिक नोटिस जारी करना है जिससे स्पष्ट हो जाये कि जमीन घोषणा में उल्लिखित सार्वजनिक उद्देश्य के लिये आवश्यक है तथा दूसरे इससे विभागीय अधिकारियों को धारा 4(2) में दिये गये कार्यों के लिये पर्याप्त अधिकार प्राप्त हो जाता है। यदि धारा 4(1) के तहत अधिसूचना दोषपूर्ण है और अधिनियम की आवश्यकताओं का अनुसरण नहीं करती है तो इस स्थिति में न केवल अधिसूचना बल्कि बाद की कार्रवाई भी विकृत होगी। विचाराधीन केस में जमीन का विवरण काफी रहस्यपूर्ण और अस्पष्ट है। न केवल कोई खसरा नंबर नहीं दिया गया है बल्कि स्थान के विषय में भी साफ जानकारी नहीं है जिससे अधिसूचना अवैध हो जाती है। इसके अतिरिक्त, यह समझ पाना कठिन है कि राज्य सरकार ने किस ठोस आधार पर धारा 4 व 6(1) के तहत जारी अधिसूचनाओं में सार्वजनिक उद्देश्य का भिन्न-भिन्न प्रकार से उल्लेख किया है। इससे दिखता है कि नागरिकों की संपत्ति के विषय में काफी कामचलाऊ रवैया अपनाया गया है।

अधिग्रहण सार्वजनिक उद्देश्य के लिये किया गया था या नहीं इस विषय में धारा 6(1) के प्रावधान औचित्यपूर्ण नहीं हैं। धारा 6(1) के प्रावधानों ने धारा 6 के तहत घोषणा को तब तक के लिये प्रतिबंधित कर दिया जब तक कि निम्नलिखित में से एक या दूसरी शर्त पूरी नहीं हो जाती है : (1) यदि अधिग्रहण कम्पनी के लिये किया गया है तो अधिग्रहित जमीन के लिये कम्पनी के सेस से, (2) पूरी तरह या अंशतः सार्वजनिक राजस्व से या (3) किसी स्थानीय निकाय द्वारा नियंत्रित अनुदान द्वारा मुआवजा दिया जाये।

बाद की दोनों अवस्थायें उन परिस्थितियों में व्यावहारिक हैं जहां अधिग्रहण सार्वजनिक उद्देश्य के लिये किया गया है। धारा 6(3) के तहत सार्वजनिक उद्देश्य के लिये जमीन की आवश्यकता की विज्ञप्ति आवश्यक है।

अधिग्रहण के लिये चुनी गयी जमीन तो वस्तुतः सार्वजनिक उद्देश्य के लिये आवश्यक है या नहीं इस विषय में जांच का कार्य न्यायालय नहीं कर सकता था, हालांकि याचिका में जोर देकर कहा गया था कि अधिग्रहण प्रक्रिया में प्रशासन ने अपने

अधिकार क्षेत्र से बाहर जाकर काम किया है लेकिन इस दलील को पुष्ट करने के लिये कोई साक्ष्य नहीं दिये गये थे और ऐसा कोई कारण नहीं था जिसके आधार पर संदेह किया जाये कि जमीन का अधिग्रहण रहन के उद्देश्य से किया जा रहा था या कि उसका प्रयोग उल्लिखित उद्देश्य के लिये नहीं किया जायेगा। इस विषय में संदेह करने का कोई कारण नहीं था कि जमीन का अधिग्रहण उसी कार्य के लिये किया जा रहा है जिसके विषय में अधिसूचना में चर्चा की गयी है और कि उसका प्रयोग उसी उद्देश्य के लिये किया जायेगा।

सार्वजनिक उद्देश्य की मूल विशेषता प्रस्तावित अधिग्रहण की उपयोगिता के बारे में है। सार्वजनिक उद्देश्य की व्यापक व्याख्या करते हुए कहा जा सकता है कि ऐसा कोई भी उद्देश्य जिससे जनता को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कोई भी लाभ पहुंचता हो तो वैसा कोई भी कार्य सार्वजनिक उद्देश्य है। इस प्रकार का कोई भी ऐसा कार्य जो उपयोगी हो और जिससे कोई सार्वजनिक लाभ प्राप्त होता हो वह सार्वजनिक उद्देश्य है।

न्यायालयों के निर्देश (वर्ष 2011):—

न्यायालय भी कह रहे हैं भूमि की लूट हो रही है, कानून को अंगूठा दिखाया जा रहा है

- ग्रेटर नोएडा की 176 हेक्टेयर जमीन का अधिग्रहण सुप्रीम कोर्ट ने रद्द किया
- उ.प्र. सरकार ने जनहित के नाम पर बिल्डरों को फायदा पहुंचाया: सुप्रीम कोर्ट

6 जुलाई, 2011 को सुप्रीम कोर्ट ने ग्रेटर नोएडा की जमीन के मामले में इलाहाबाद हाई कोर्ट के आदेश को सही ठहराया है। न्यायमूर्ति जी एस सिंघवी और न्यायमूर्ति ए के गांगुली की एक खंडपीठ ने ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण पर दस लाख रुपए का जुर्माना ठोक दिया। साथ ही प्राधिकरण को हिदायत दी कि किसानों की 176 हेक्टेयर जमीन उन्हें वापस दे दी जाए। यह जमीन प्राधिकरण ने निजी क्षेत्र के बिल्डरों को सौंप दी थी।

सुप्रीम कोर्ट ने माना है कि ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण ने बिल्डरों को जमीन नियमों का खुला उल्लंघन कर के दी है। जमीन का अधिग्रहण करते वक्त उसका मकसद और बताया गया था। यहां तक कि औद्योगिक जमीन के भू-उपयोग की रिहाइशी में बदलने की मंजूरी से पहले ही प्राधिकरण ने यह जमीन बिल्डरों को थमा दी। हाई कोर्ट ने राज्य सरकार को फटकारते हुए कहा था कि ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण ने

जमीन का अधिग्रहण करने के लिए जिस आपात प्रावधान का इस्तेमाल किया था वह पूरी तरह आंखों में धूल झाँकने की सत्ता की कवायद थी।

इलाहाबाद हाई कोर्ट के फैसले को सुप्रीम कोर्ट में ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण और सुपरटेक व आम्रपाली जैसे बिल्डरों ने चुनौती दी थी। हाई कोर्ट के इस 31 मई के आदेश में गुलिस्तां गांव में किए गए जमीन के अधिग्रहण को रद्द कर दिया गया था। भूमि अधिग्रहण कानून की धारा 17 के तहत आपात प्रावधान का इस्तेमाल कर ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण ने किसानों को एतराज करने के उनके मौलिक और कानूनी अधिकार से भी वंचित कर दिया था। इसी पर हाई कोर्ट को गुस्सा आया था। इसे सुप्रीम कोर्ट ने भी आंख में धूल झाँकने वाली कार्रवाई माना। हालांकि प्राधिकरण के वकील ने दलील दी थी कि जमीन का अधिग्रहण 2021 के औद्योगिक मास्टर प्लान का हिस्सा था।

• **फिर से आबंटित नहीं की जा सकती अधिग्रहीत भूमि: सुप्रीम कोर्ट**
सुप्रीम कोर्ट ने कहा है कि सार्वजनिक उपयोग के मकसद से अधिग्रहित की गई भूमि को दूसरे लाभार्थियों को फिर से आबंटित नहीं किया जा सकता। अदालत ने यह फैसला जयपुर शहर से जुड़े और करीब दो दशक से ज्यादा चले एक भूमि विवाद में दिया है। न्यायमूर्ति जी एस सिंघवी और न्यायमूर्ति ए के गांगुली की एक पीठ ने इस मामले में राजस्थान हाई कोर्ट को फटकार लगाई कि सुप्रीम कोर्ट के पहले के फैसले के बावजूद उसने आबंटन को बरकरार रखा। सुप्रीम कोर्ट ने पहले फैसला दिया था कि भूमि अधिग्रहण कानून के तहत भूमि अधिग्रहण अधिकारी को भूमि आबंटन का अधिकार नहीं है। यह सिर्फ दावा करने वालों को आर्थिक मुआवजे की मंजूरी दे सकता है।

अदालत ने खेद जताया कि 552 बीघा जमीन के आबंटन के लिए षहरी विकास मंत्री की अध्यक्षता वाले पैनल की अनुशंसाओं का सरकार और हाई कोर्ट ने कुछ निहित स्वार्थों के लिए गलत अर्थ निकाला और वास्तविकता यह है कि कोई वैधानिक मंजूरी नहीं ली गई। जजों ने कहा कि यह राज्य के संबंधित राजनीतिकों का उस बात को वैध बनाने का प्रयास था जिसे इस अदालत ने अवैध घोषित कर दिया है। विवाद राजस्थान इंफ्रामेंट ट्रस्ट के 13 मई 1960 को भोजपुरा और चक सुदर्शनपुरा गांव की 552 बीघा जमीन के अधिग्रहण से संबंधित है। इसमें राज्य विधानसभा के एक भवन सहित जयपुर षहर के नियोजित विकास की बात शामिल थी।

• **सुप्रीम कोर्ट द्वारा हापुड़ में भूमि अधिग्रहण गैर कानूनी करार**

24 अगस्त, 2011 को विकास के नाम पर भूमि अधिग्रहण की मायावती

सरकार की कार्यवाही को उस समय एक और झटका लगा जब सुप्रीम कोर्ट ने हापुड़ में चमड़ा उद्योग के लिए भूमि का अधिग्रहण निरस्त कर दिया।

न्यायमूर्ति जीएस सिंघवी और एचएल दत्त की खंडपीठ ने देवेन्द्र त्यागी और कुछ अन्य किसानों की याचिका पर भूमि अधिग्रहण निरस्त करते हुए इस संबंध में 2006 में जारी अधिसूचना रद्द कर दी। हापुड़-पिलुआ विकास प्राधिकरण द्वारा हापुड़ में चमड़ा नगर विकसित करने के लिए चिटोली, सबली और इमतोरी गांवों में भूमि अधिग्रहण के लिए भूमि अधिग्रहण कानून की धारा 17 के तहत जुलाई 2006 में अधिसूचना जारी की थी।

• **सुप्रीम कोर्ट ने लगायी कर्नाटक में 2 और जिलों में खनन पर रोक**
सुप्रीम कोर्ट ने कर्नाटक में बेलारी के अलावा टुमकुर और चित्रदुर्गा जिलों में खनन पर रोक लगा दी है। 19 अगस्त को कोर्ट ने निजी खनन कंपनियों और सरकार को मामले पर नोटिस जारी किया था। कोर्ट ने ये फैसला सेंट्रल इम्पावर्ड कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर लिया है। रिपोर्ट में टुमकुर और चित्रदुर्गा जिलों में बड़े पैमाने पर अवैध खनन जारी होने की बात सामने आई थी।

हालांकि पहले से ही टुमकुर और चित्रदुर्गा जिलों से निकले आयरन ओर को कंपनियां इस्तेमाल कर सकती हैं। कोर्ट ने कंपनियों को कितनी आयरन ओर की जरूरत है यह बताने को कहा है।

• **इलाहाबाद हाई कोर्ट ने नोएडा भूमि अधिग्रहण मामले में सरकार से किया जवाब तलब**

नोएडा और ग्रेटर नोएडा में भूमि अधिग्रहण को चुनौती देने वाली सभी याचिकाओं को सुनवाई के लिए एक बड़ी पीठ के पास भेजते हुए इलाहाबाद हाई कोर्ट ने 25 जुलाई 2011 को कहा कि उत्तर प्रदेश सरकार को इस बात का जवाब देना होगा कि जब क्षेत्र में काम शुरू करने में उसे सालों लग गए तो फिर क्यों वह बार-बार आपात प्रावधान लागू कर भूमि अधिग्रहण करती रही।

भूमि अधिग्रहण के करीब एक दर्जन गांवों में उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से तीन हजार हेक्टेयर से ज्यादा भूमि अधिग्रहण को चुनौती देने वाले सैकड़ों किसानों की याचिकाओं पर सुनवाई करते हुए न्यायमूर्ति अमिताभ लाला और न्यायमूर्ति अशोक श्रीवास्तव की पीठ ने कहा— हम देखते हैं कि राज्य सरकार ने क्षेत्र में भूमि अधिग्रहण के लिए बार-बार आपात प्रावधान का इस्तेमाल किया। अदालत यह जानना चाहेगा कि ऐसा करने के पीछे क्या वजह रही।

अदालत ने आश्चर्य जताते हुए कहा— क्यों राज्य सरकार को अधिग्रहित भूमि पर काम शुरू करने में महीनों, कभी कभी सालों लग जाते हैं, जबकि वह आपात स्थिति बताकर भूमि का अधिग्रहण करती है और भूमि मालिकों को आपत्ति उठाने का मौका तक नहीं दिया जाता।

इसके अलावा, अदालत ने भूमि इस्तेमाल के उद्देश्य में बदलाव पर भी राज्य सरकार से जवाब मांगा है। औद्योगिक विकास के उद्देश्य से किसानों की भूमि का अधिग्रहण करने के बाद भूमि की प्रकृति बदलकर उसे बिल्डरों को क्यों सौंप दिया जाता है। अदालत ने कहा— राज्य सरकार को मामले की अगली सुनवाई के दौरान इन दो बिंदुओं पर संतोषजनक जवाब देना होगा।

- **इलाहाबाद हाई कोर्ट ने ग्रेटर नोएडा के दो गांवों के भूमि अधिग्रहण को रद्द किया**

मायावती सरकार को एक और झटका देते हुए इलाहाबाद हाई कोर्ट ने ग्रेटर नोएडा में दो गांवों में करीब 600 हेक्टेयर भूमि का अधिग्रहण 18 जुलाई 2011 को रद्द कर दिया। किसानों की याचिकाओं पर सुनवाई करते हुए न्यायमूर्ति सुनील अंबावानी और न्यायमूर्ति एसएस तिवारी की खंडपीठ ने गौतमबुद्ध नगर जिले की दादरी तहसील के अंतर्गत पटवारी और देवला गांवों में 589.13 हेक्टेयर भूमि के अधिग्रहण को रद्द कर दिया।

राज्य सरकार ने मार्च 2008 और मई 2008 में अधिसूचना के जरिए इस भूमि का अधिग्रहण किया था। इसका उद्देश्य दिल्ली से सटे ग्रेटर नोएडा में रिहाइशी इमारतों का निर्माण करना था। हाई कोर्ट के इस आदेश से एक पखवाड़े पहले सुप्रीम कोर्ट ने इलाके के शाहबेरी गांव में राज्य सरकार की ओर से किए गए 156 हेक्टेयर भूमि का अधिग्रहण यह कहते हुए रद्द कर दिया था कि **प्राधिकरण लोक हित के नाम पर बिल्डरों को आगे बढ़ा रहा है।**

आदेश दो गांवों के सौ से अधिक किसानों की याचिका पर सुनवाई के बाद दिया गया। इन किसानों ने भूमि अधिग्रहण को चुनौती देते हुए इलाहाबाद हाईकोर्ट में याचिका दायर की थी। अदालत ने इस साल 12 मई को ग्रेटर नोएडा के शाहबेरी गांव में 150 हेक्टेयर भूमि का अधिग्रहण रद्द कर दिया था, वहीं 13 मई को सूरजपुर परगना गांव में 73 एकड़ भूमि का अधिग्रहण भी रद्द कर दिया था।

शाहबेरी गांव में भूमि अधिग्रहण रद्द करने के हाईकोर्ट के फैसले के खिलाफ उत्तर प्रदेश सरकार की अपील पर हाल ही में सुप्रीम कोर्ट ने राज्य सरकार की भूमि अधिग्रहण नीति पर उसे फटकार लगाई थी।

भूमि अधिग्रहण अधिनियम के अंतर्गत भूमि-अधिग्रहण की प्रक्रिया :

5ए आपत्तियों की सुनवाई—

1. कोई भी व्यक्ति, जो धारा 4, उपधारा (1) में अधिसूचित जमीन में रुचि रखता हो, जो कि किसी सार्वजनिक उद्देश्य या कम्पनी के लिये आवश्यक है, वह व्यक्ति अधिसूचना के प्रकाशन के 30 दिन के भीतर जमीन या इलाके की किसी भी जमीन के अधिग्रहण के विषय में आपत्ति उठा सकता है।
2. उपधारा (1) के तहत की जाने वाली प्रत्येक आपत्ति कलैक्टर को लिखित में दी जायेगी और कलैक्टर आपत्तिकर्ता या वादी को सुनवाई का अवसर देगा (व्यक्तिगत रूप से या अपनी ओर से अधिकृत व्यक्ति के द्वारा)। उसके बाद, ऐसी तमाम आपत्तियों को सुनने के बाद और तमाम संबंधित जांच पड़ताल करने के बाद (या तो एक या जमीन के विभिन्न टुकड़ों के लिये कई रिपोर्टें तैयार करके सरकार को भेजेगा, तथा इन रिपोर्टों में आपत्तियों के बारे में उसकी सिफारिशें तथा उसके द्वारा चलायी गयी कार्रवाई का ब्यौरा शामिल होगा, ताकि सरकार उचित निर्णय ले सके)। आपत्तियों पर संबंधित सरकार का फैसला अंतिम होगा।
3. इस धारा के उद्देश्यों के लिये, उस व्यक्ति को रुचि रखने वाला या संबंधित व्यक्ति माना जायेगा जो इस धारा के तहत अधिग्रहण की स्थिति में मुआवजे का दावा करने का अधिकारी होगा।

धारा 5ए को शामिल करने के पीछे विचार यह था कि इससे उन लोगों को अपनी चिंतायें या शिकायतें रखने और उनकी सुनवाई करवाने का अवसर मिल जायेगा जो प्रस्तावित अधिग्रहण से प्रभावित होने वाले हैं।

इस प्रकार, धारा 4 के तहत जारी की गयी किसी भी अधिसूचना से प्रभावित होने वाला कोई भी व्यक्ति अधिसूचना के प्रकाशन के तीस दिन की अवधि के भीतर आपत्तियां पेश कर सकता है। कलैक्टर आपत्तियों की सुनाई करने के बाद अपनी ओर से जांच करेगा और तदनुसार अपनी सिफारिशों के साथ, सरकार को रिपोर्ट देगा। इस रिपोर्ट पर विचार करते हुए सरकार कलैक्टर की सिफारिशों के अनुसार आगे फैसला करेगी। सरकार का फैसला अंतिम होगा। सरकार, कलैक्टर की सिफारिशों को स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं है। लेकिन सरकार द्वारा कलैक्टर की सिफारिशों पर विचार करना महत्वपूर्ण है।

लेकिन अधिनियम, कलैक्टर द्वारा आपत्तियों के निराकरण के लिये अपनायी जाने वाली प्रक्रिया के विषय में शांत है। विभिन्न राज्यों ने आपत्तियों के निराकरण के लिये दिशा-निर्देश निर्धारित किये हैं। सुप्रीम कोर्ट की मान्यता है कि जहां मूल अधिनियम किन्हीं पहलुओं के विषय में शांत हों वहां दूसरे संबंधित नियमों का सहारा लिया जाये।

उत्तर प्रदेश द्वारा निर्धारित किये गये दिशा-निर्देश इस प्रकार हैं :

अधिसूचना क्रमांक 791/1501, तारीख 19 नवंबर, 1923, के क्रम में यहां सामान्य सूचना के लिये अधिसूचित किया जाता है कि परिषद में निहित सरकार ने भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 की धारा 55 द्वारा प्रदत्त शक्तियों के अनुरूप धारा 5ए के कार्यान्वयन से संबंधित अधिकारियों के दिशा-निर्देश के लिये निम्नलिखित नियम बनाये हैं:

1. धारा 5ए के भाग (2) के तहत आपत्तिकर्ता को अधिकार है कि वह न केवल लिखित आपत्ति बल्कि साक्ष्य भी उपलब्ध करा सकता है।
2. धारा 5 के तहत आपत्तियों की सुनवाई करने की जिम्मेदारी कलैक्टर की होगी (धारा 3 में परिभाषित, भाग (ब) के अनुसार उसे व्यक्तिगत रूप से सुनवाई करनी होगी)।
3. जब कलैक्टर को निश्चित अवधि के भीतर आपत्ति प्राप्त हो जाती है तो वह आपत्तिकर्ता को नोटिस के द्वारा सूचित करेगा कि वह कलैक्टर द्वारा निर्धारित तारीख पर उसके सामने स्वयं या अपने प्रतिनिधि के जरिये उपस्थित हो तथा चाहे तो वह साक्ष्य भी ला सकता है जिन पर वह विश्वास करता है। सुनवाई या जांच का नोटिस उस सरकारी विभाग या सरकार के अधिकारी को भी भेजा जायेगा जिसके माध्यम से अधिग्रहण किया जाना है, और यदि वह अधिकारी चाहे तो स्वयं भी अपने पक्ष में साक्ष्य लेकर प्रस्तुत हो सकता है।
4. किसी भी पक्ष के निवेदन पर कलैक्टर धारा 14 के तहत प्राप्त अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए गवाहों की पेशी और दस्तावेजों का प्रस्तुतीकरण सुनिश्चित कर सकता है। गवाहों को कोई शपथ नहीं दिलवाई जायेगी।
5. गवाहों के वक्तव्यों को दर्ज किया जायेगा और उन पर कलैक्टर के हस्ताक्षर के बाद उन्हें रिकार्ड में शामिल कर दिया जायेगा।
6. यदि आवश्यक हो तो कलैक्टर समय-समय पर सुनवाई स्थगित भी कर सकता है।

7. सारी आपत्तियों की सुनवाई और उनके पक्ष में प्रस्तुत किये गये सभी साक्ष्यों तथा प्रस्तावित अधिग्रहण के समर्थन में प्रस्तुत किये गये साक्ष्यों को दर्ज करके और आवश्यक हो तो आगे जांच करके केस स्थानीय सरकार के सुपुर्द कर दिया जायेगा। उसकी (कलैक्टर की) रिपोर्ट के साथ कार्रवाई का रिकार्ड भी संलग्न होगा।

कलैक्टर के सामने पेश की जाने वाली आपत्तियों का बहुत महत्व है और उनके निर्धारण के विषय में बेहद सावधानी रखने की जरूरत है, क्योंकि उस अधिसूचना के विषय में आगे जो भी आपत्तियां उठायी जायेंगी वह इसी पर आधारित होंगी। यह जांच करना भी महत्वपूर्ण है कि जिस उद्देश्य के लिये जमीन का अधिग्रहण किया जा रहा है उसके लिये इलाके में कोई दूसरी जमीन भी उपलब्ध हो सकती है या नहीं और यह अत्यंत महत्वपूर्ण है कि आपत्तियां नोटिस जारी होने की तारीख के तीस दिन के भीतर दाखिल कर दी जायें। तीस दिन की अवधि समाप्त हो जाने के बाद दाखिल होने वाली किसी भी आपत्ति पर विचार नहीं किया जायेगा।

धारा 5ए एक अनिवार्य चरण है और उसका अनुसरण किया जाना आवश्यक है। यदि धारा 5ए का अनुसरण नहीं किया गया है तो अधिग्रहण को दोषपूर्ण माना जायेगा। इस धारा का एकमात्र अपवाद धारा 17 द्वारा राज्य के ऐसे अधिग्रहण से संबंधित है जिसमें राज्य को अधिग्रहण की आपात आवश्यकता है।

धारा 6, 4, 17(1) और 17(4)

धारा 17(1) के तहत अतिशीघ्रता उपबन्ध की व्यवस्था/धारा 4(1) में दिये गये कदमों के अनुसरण की अनिवार्यता/धारा 17(4) के तहत शक्तियों के उपयोग के लिये धारा 4(1) के तहत तीन कदमों का अनुसरण अपरिहार्य है लेकिन यह आवश्यक नहीं था कि यह तीनों कदमों धारा 6(1) के तहत घोषणा किये जाने से पहले सम्पन्न कर लिये जायें। यह आवश्यक था कि धारा 4(1) और 6(1) के तहत अधिसूचनाओं के प्रकाशन के बीच कम से कम एक दिन का अंतराल हो। जमीन के अधिग्रहण और आपात स्थिति पर विचार करने तथा धारा 4(1) के तहत अधिसूचना और धारा 6 के तहत घोषणा प्रकाशित करने व उसे गजेट में प्रकाशित करवाने कि, प्रस्तावित अधिग्रहण सार्वजनिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये किया जा रहा है, के लिये समुचित अधिकार प्राप्त सरकार को कदम उठाने चाहिये। समाचार पत्रों में प्रकाशन और नोटिस की विषयवस्तु को संबंधित स्थानों या व्यक्तियों तक पहुंचवाने का कार्य सरकार

द्वारा अधिकृत कलैक्टर और उसके मातहत स्टाफ का होगा। जबतक ऐसा नहीं किया जाता है तब तक सरकार धारा 17 की उपधारा (1) और (2) में दी गयी शक्तियों के अनुरूप सार्वजनिक उद्देश्य की पूर्ति के लिये सुगमता पूर्वक आगे नहीं बढ़ सकेगी।

आवश्यक शर्तों की पूर्ति के बाद धारा 6 के तहत अधिसूचना/ इसके बाद की प्रक्रिया विकृत नहीं होगी। धारा 5ए के तहत जांच की गयी और आपत्तियों पर समुचित सुनवाई की गयी, एडीशनल कलैक्टर ने अधिग्रहण की सिफारिश की थी, और इस संदर्भ में अपनी रिपोर्ट सौंप दी थी और उसके बाद सरकार ने धारा 6 के तहत अधिसूचना जारी कर दी। ऐसी परिस्थितियों में, यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 6 के प्रावधानों का उल्लंघन किया गया है और उसके बाद चलायी गयी कार्रवाई दोषपूर्ण थी।

धारा 4 और 6 के तहत सार्वजनिक उद्देश्य के लिये अधिसूचना/1985 में धारा 6 के तहत 1980 में धारा 4 के तहत प्रकाशित घोषणा/एक रिट याचिका में आरोप लगाया गया था कि अधिसूचना 3 वर्ष बाद प्रकाशित की गयी थी और इसलिये उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ ने अधिसूचना को यह कहते हुए वैध माना कि कुछ भूस्वामियों ने आगे की कार्रवाई को रोकने के संबंध में स्थगनादेश ले लिया था। जब धारा 5ए के तहत जांच करने का कार्य समुचित प्रकार कर लिया गया, तो धारा 6 के तहत जारी की गयी वैध अधिसूचना के औचित्य के विषय में संबंधित अधिकारी कोई कदम नहीं उठा सकता है। परिणामस्वरूप कुछ व्यक्तियों के विषय में दिया गया स्थगनादेश दूसरों के विषय में भी मान्य था। इस तथ्य को देखते हुए कि धारा 4 के तहत जारी की गयी अधिसूचना और धारा 6 के तहत प्रकाशित की गयी घोषणा संपूर्णात्मक थी जब तक धारा 6 की घोषणा को पूरी तरह स्वीकार नहीं कर लिया जाता है तब तक बिल्कुल आगे नहीं बढ़ा जा सकता है मानो पूरी अधिसूचना खारिज कर दी गयी हो।

आपत्तियों की सुनवाई हो चुकने के बाद सरकार घोषणा कर देगी कि सार्वजनिक उद्देश्य के लिये जमीन का अधिग्रहण कर लिया गया है। इस घोषणा के बाद सरकार कलैक्टर को निर्देश देगी कि वह अधिसूचना में उल्लिखित जमीन का अधिग्रहण कर ले। अधिग्रहण के बाद कलैक्टर जमीन का सीमांकन करेगा। बहुत संभव है कि कई मामलों में धारा 4 के तहत नोटिस प्रकाशित होने से भी पहले ही ऐसा कर लिया गया हो।

जमीन का सीमांकन हो चुकने के बाद कलैक्टर एक नोटिस जारी करेगा जिसमें सभी सम्बद्ध पक्षों से अपील की जायेगी कि वह मुआवजे के लिये

आवेदन कर दें क्योंकि सरकार जमीन का अधिग्रहण करने वाली है। मुआवजे का दावा नोटिस जारी होने के पंद्रह दिन के भीतर कलैक्टर के सामने पेश करना होगा।

कलैक्टर दावेदारों से ऐसे व्यक्तियों की सूची भी मांग सकता है जो संपत्ति से अप्रत्यक्ष रूप से संबद्ध हो सकते हैं।

धारा 5ए के तहत आपत्तियों के निपटारे के बाद अपनायी जाने वाली प्रक्रिया केवल मुआवजे के पहलू से संबंधित है। इसका अर्थ है कि किसी भी स्थिति में अधिग्रहण तो अवश्य होना है। इसलिये यह आवश्यक है कि कलैक्टर के सामने जो आपत्तियां पेश की जायें वह सुविचारित और सावधानीपूर्वक तैयार की गयी हों।

यदि आपत्तियों की सुनवाई करने के बाद कलैक्टर घोषणा कर देता है तो असहमति की स्थिति में आगे की प्रक्रिया यह होगी कि उच्च न्यायालय में राज्य के विरुद्ध वाद दायर कर दिया जाय।

कानूनन प्रावधान है कि अधिसूचना को आधिकारिक गजेट में प्रकाशित किया जाये जिसमें सरकार के इस प्रस्ताव का उल्लेख हो कि सार्वजनिक उद्देश्य के लिये जमीन का अधिग्रहण किया जाने वाला है। इसमें आगे कहा गया है कि कलैक्टर इस विषय में एक नोटिस ऐसे स्थान पर जारी करे जो सबके लिये सुविधाजनक तथा उसी क्षेत्र में स्थित हो। धारा के दूसरे भाग जिसमें एक सुविधाजनक स्थान पर नोटिस जारी करने की चर्चा की गयी है, का उद्देश्य यह प्रतीत होता है कि इससे अधिग्रहण से प्रभावित होने वाले व्यक्तियों को सूचना मिल जायेगी। नियम 1 जो कि विचार करने के लिये प्रासंगिक है, वह इस प्रकार है :

जब अधिनियम की धारा 4 के तहत कोई भी अधिसूचना प्रकाशित की जा चुकी है लेकिन धारा 17 के प्रावधान लागू नहीं किये गये हैं और कलैक्टर ने धारा 4(1) के प्रावधानों के अनुरूप संबद्ध पक्षों को नोटिस भेज दिया हो तो इस संदर्भ में नोटिसों में आपत्तियों के लिये तय तारीख तक आने वाली आपत्तियों को धारा 5ए के तहत कलैक्टर पहले अपनी कार्रवाई में दर्ज करेगा। दूसरे, कलैक्टर इस बात पर भी विचार करेगा कि आपत्तियां इन नियमों के अनुसार विचारणीय हैं या नहीं।

... इसलिये, स्पष्ट है कि धारा 4(1) को नियम 1 के साथ पढ़ने पर यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 4 के तहत प्रत्येक संबंधित व्यक्ति को व्यक्तिगत नोटिस भेजा जाये और किसी से नोटिस के अभाव में अधिग्रहण की कार्रवाई अवैध होगी।

. . . . नोटिस देने के तरीके के विषय में स्वयं धारा 4(1) में ही उल्लेख किया गया है कि अधिसूचना की विषयवस्तु को क्षेत्र के किसी सुविधान. जनक स्थान पर प्रकाशित कर दिया जाये।

धारा 5ए(2) के तहत सुनवाई का अधिकार अनुल्लंघनीय है और भूमि अधिग्रहण अधिकारी को भूस्वामी या संबंधित व्यक्ति को सुनवाई का अवसर देने की व्यवस्था करनी होगी। अदालत द्वारा श्याम नंदन प्रसाद बनाम बिहार राज्य मामले में यह व्यवस्था दी गयी थी कि भूमि अधिग्रहण अधिकारी ने नोटिस जारी करने के विषय में कोई लापरवाही नहीं की थी लेकिन स्वयं संबंधित पक्षों ने ही इस विषय में पेश होने को प्राथमिकता नहीं दी थी इसलिये सुनवाई का अवसर नहीं मिलने के बारे में भूमि अधिग्रहण अधिकारी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

अभी हाल ही में उ. प्र. राजस्थान राज्यों के भूमि अधिग्रहण के विवादों पर सुप्रीम कोर्ट तथा इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने महत्वपूर्ण निर्णय देते हुए सरकारों को भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894 के तहत प्राप्त आपात अधिकारों का दुरुपयोग करने, लोकहित के नाम पर बिल्डरों को आगे बढ़ाने, भूमि अधिग्रहण के उद्देश्यों में बदलाव करने के लिए फटकार लगायी है। सर्वोच्च न्यायालय ने एक खनन के मामले में यह भी पूछा है कि कितने आयरन ओर की जरूरत है। न्यायालय के हाल के इन निर्देशों से सरकार की नीति, नीयत तथा कानून की असलियत सामने आती है:

भूमि अधिग्रहण अधिनियम 1894

में

समय समय पर किये गये प्रमुख संशोधन

- समाजवादी समाज के स्वप्नदृष्टा नेहरू के समय में भूमि अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम 1962 पारित किया गया। इसी वर्ष सर्वोच्च न्यायालय ने एक वाद का निस्तारण करते हुए व्यवस्था दी थी कि **टेक्सटाइल उपकरणों की उत्पादक कंपनी को ज़मीन उपलब्ध कराना 'सार्वजनिक उद्देश्य' नहीं हो सकता।** फलतः नेहरू की सरकार ने अधिनियम में संशोधन करके ऐसी निजी कंपनियों को भी सार्वजनिक उद्देश्य की कोटि में ला दिया जो सार्वजनिक उद्देश्य हेतु उत्पादन करने जा रही हैं। इस प्रकार **नेहरू युगीन राज्य यह कानूनी हक हासिल करने में कामयाब रहा कि वह निजी उद्योगों, कंपनियों के लिए भी सार्वजनिक उद्देश्य की कोटि में भूमि अधिग्रहण कर सकता है।**
- भूमि अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम 1967— भूमि—अधिग्रहण के संदर्भ में अलग—अलग विज्ञप्तियों का जारी होना भी विवादों का स्रोत रहा है। सुप्रीम कोर्ट ने 1966 में व्यवस्था दी थी कि ज़मीन के अधिग्रहण के संदर्भ में जो मूल उद्देश्य निर्धारित या घोषित किया गया था, उस उद्देश्य को बदलना गैर कानूनी है। इस फैसले के बाद बड़ी संख्या में अधिग्रहणों को रोक देना पड़ा क्योंकि सरकार बार—बार अपने उद्देश्यों में बदलाव करती रहती थी तथा तत्संबंधित विज्ञप्तियाँ बदलती रहती थीं। इस स्थिति से निपटने के लिए **1967 में राज्य की तरफ से एक संशोधन किया गया जिसका आशय था कि अधिनियम की मौजूदा रूपरेखा में अधिग्रहण के उद्देश्यों की विज्ञप्ति को उसके प्रकाशन के तीन वर्ष की अवधि के भीतर ही बदला जा सकता है। जिसका अर्थ था भूमि—अधिग्रहण के उद्देश्यों में बदलाव को एक कानूनी आधार मिल जाना।**
- भूमि अधिग्रहण अधिनियम का कार्यान्वयन सदा ही विवादों का शिकार रहा है, क्योंकि यह व्यक्ति विशेष के संपत्ति के अधिकार पर चोट करता

है और बदले में उसको समुचित पुनर्वास भी नहीं दे पाता है। पूरे देश में गांवों और छोटे-मोटे कस्बों में अनगिनत लोगों को जमीन से हाथ धोना पड़ा है और उसके बदले में जहां एक ओर उन्हें केवल मामूली मुआवजे दिये गये वहीं दूसरी ओर पुनर्वास की व्यवस्था भी नहीं की गयी। 1984 के संशोधन का मुख्य जोर अधिग्रहण प्रक्रिया के साथ जुड़ी लेट-लतीफी और मुआवजों की अदायगी में अनावश्यक देरी पर लगाम लगाने पर ही है।

भूमि-अधिग्रहण (संशोधन) अधिनियम 1984 के अंतर्गत मुख्य संशोधन थे—

1. धारा 4(1) के अंतर्गत भूमि अधिग्रहण संबंधी उद्देश्य की घोषणा और धारा 6(1) के तहत अधिग्रहण की घोषणा के बीच तमाम कारवाईयों के लिये एक वर्ष की समयावधि निर्धारित कर दी गयी।
2. संशोधन के परिणामस्वरूप यह अनिवार्य है कि धारा 11(1) के तहत कलैक्टर द्वारा धारा 6(i) के अंतर्गत अधिग्रहण की घोषणा के पश्चात दो वर्ष के भीतर निर्णय सुना दिया जाये।
3. धारा 4(i) के तहत नोटिस जारी होने की तारीख के बाद रकम के भुगतान में जितना भी समय लगेगा, उस अवधि के लिये धारा 23(I-A) के तहत रकम पर 12 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज भी दिया जायेगा।
4. धारा 23(2) में संशोधन के अनुसार अब अधिग्रहीत जमीन के बाजार मूल्य के 30 प्रतिशत के बराबर सांत्वना राशि दी जायेगी। संशोधन से पहले यह राशि 15 प्रतिशत थी। इस सांत्वना राशि का प्रावधान किसी भी प्रकार के नुकसान, पीड़ा या दुखद भावनाओं की भरपाई के लिये किया गया है।
5. धारा 28-ए के अंतर्गत संशोधन, उन लोगों को अपनी जमीन के पुनर्मूल्यांकन के लिये आवेदन का एक और अवसर उपलब्ध कराता है, जो कलैक्टर के द्वारा दिये गये निर्णय से संतुष्ट नहीं हैं। लेकिन संशोधन अधिनियम ने सरकार की विवेकाधीन शक्तियों में और इजाफा किया है और साथ ही कम्पनियों द्वारा भूमि अधिग्रहण की प्रक्रिया को सरल भी बना दिया है।

निस्संदेह संशोधन अधिनियम, 1984 ने भूस्वामियों को कुछ राहत तो दी है लेकिन इससे सरकार की शक्तियों में भी इजाफा हुआ है। अब जमीन का अधिग्रहण किसी

सार्वजनिक निगम द्वारा भी किया जा सकता है, मानो वह सार्वजनिक उद्देश्य के लिये हो। धारा 4 और 6 के बीच तीन वर्ष की अधिकतम समय सीमा निर्धारित कर दिये जाने से भूस्वामियों को राहत मिली है। सांत्वना राशि 15 प्रतिशत से बढ़ाकर 30 प्रतिशत कर दी गयी है और आपात अधिग्रहण की स्थिति में, मुआवजे का 80 प्रतिशत अंश तत्काल अदा किया जाना आवश्यक है। संशोधन यह भी सुविधा देता है कि यदि एक व्यक्ति अदालत के माध्यम से अपना मुआवजा बढ़वा लेता है तो उस आदेश का सहारा लेकर दूसरे प्रभावित व्यक्ति भी अपनी राशि बढ़वा सकते हैं, किन्तु अधिनियम में मुआवजे की राशि के दिए जाने के बारे में कोई समय सीमा निर्धारित नहीं की गई है।

संशोधन अधिनियम ने कुल मिलाकर, भूमि अधिग्रहण के विषय में राज्य की शक्तियों को बढ़ाया ही है। अधिनियम साफ तौर पर संपन्न वर्ग के पक्ष में है, जो सार्वजनिक उद्देश्य के नाम पर मिट्टी के मोल जमीनें खरीद कर मकान, दुकान, क्लब और होटल जैसे निर्माण करते हुए बेहिसाब कमाई कर सकता है। अधिनियम साफ तौर पर जन विरोधी है, क्योंकि आम आदमी को अपने वैध हकों के लिये साल-दर-साल लड़ना पड़ता है और उसके बाद भी वह राहत और सम्मानजनक भरण-पोषण की आशा नहीं रख सकता है।

आंध्र प्रदेश सरकार की पहल-

भूमि अधिग्रहण कानून केन्द्र सरकार द्वारा बनाया गया था, लेकिन राज्य भी संविधान के अनुच्छेद 246 के अंतर्गत उसमें संशोधन कर सकते हैं। विभिन्न राज्य सरकारों ने अलग-अलग समय पर भूमि अधिग्रहण के अधिकार, अधिसूचना प्रकाशित करने के तौर तरीकों, जिन व्यक्तियों को अधिसूचना भेजी जानी चाहिए, उनके चयन आदि के विषय में कई संशोधन किये हैं। साथ ही -सार्वजनिक उद्देश्य' या 'लोक हित' को भी व्याख्यायित किया है। इस प्रकार के तमाम संशोधनों में आंध्र प्रदेश सरकार द्वारा किया गया संशोधन उल्लेखनीय है क्योंकि इसमें सार्वजनिक उद्देश्य के मूल आशय को समझकर उसे राज्य अधिनियम में समाहित किया गया। **आंध्र प्रदेश सरकार के इस संशोधन में सार्वजनिक उद्देश्य की कोटि में केवल वही मामले शामिल किये गये हैं जहां ज़मीन की आवश्यकता गरीबों के लिए आवासीय सुविधाओं के निर्माण, विस्तार या सुधार के लिए है।**

इन प्रस्तावित अधिनियम का वैचारिक आधार क्या है? इन सवालों का जवाब कहाँ से मिलेगा—

- आदिवासी, दलित, अल्पसंख्यक, छोटे एवं सीमांत किसानों से खेतिहर ज़मीन लेकर उद्योगपतियों के देने के पीछे नीतिगत आधार क्या है?
- ज़मीन का कानूनी मालिकाना शासन के पास होगा या उद्योगपति के पास?
- सीलिंग एक्ट को समाप्त करके ज़मीन पर नियंत्रण चंद पूंजीपतियों के हाथ में रहेगा या सीलिंग एक्ट लागू करके अतिरिक्त ज़मीन भूमिहीन जरूरतमंदों को दी जायेगी?
- बढ़ती बेरोज़गारी, घटते सकल कृषि उत्पाद और बढ़ती पलायन की दर को देखते हुए 'अनुपस्थित ज़मींदार' की कब्जे वाली भूमि के मुद्दे पर क्या नीति है?
- निर्यातोन्मुखी उत्पादन के लिए माइनिंग के बारे में क्या नीति होगी?
- 'कारपोरेट फार्मिंग' भी सार्वजनिक उद्देश्य में होगा या नहीं?

साथ ही साथ—

हमें इस बारे में भी नीतिगत घोषणा की जरूरत है कि:

- विकास का लक्ष्य क्या है? 'लोकहित' तथा 'सार्वजनिक उद्देश्य' क्या है?
- भूमि संबंधी लेन देन की प्रक्रिया, लोकहित के निर्धारण, प्रकृति-मनुष्य के रिश्तों के निर्धारण के तौर-तरीके क्या होंगे? इन प्रक्रियाओं में आम आदमी का क्या स्थान होगा?
- भूमि अधिग्रहण अधिनियम की बजाय भूमि-अधिकार अधिनियम क्यों नहीं बनाया जा सकता? भूमि-अधिकार अधिनियम के ही अन्तर्गत आवश्यकतानुसार तथा जनहित में भूमि-अधिग्रहण की व्यवस्था क्यों नहीं की जा सकती?
- पारिस्थितिकी तथा भौगोलिक चुनौतियों को ध्यान में रखकर एक टिकाऊ तथा दूरगामी विकास की अवधारणा विकसित क्यों नहीं की जा सकती और इसी व्यावहारिक-वैज्ञानिक-मानवीय विकास नीति के अन्तर्गत ही पुनर्वास नीति को क्यों नहीं रखा जा सकता?

कौन देगा जवाब?

- भाखरा बाँध, बोकारो, धनबाद, जादुगुडा, भिलाई के विस्थापितों के मुआवजे तथा पुनर्वास का मामला अभी तक क्यों नहीं हल हो पाया?
- संविधान के पांचवें अनुभाग का लगातार मज़ाक उड़ाते हुए आदिवासियों की

भूमि सरकार, कंपनियों, पूंजीपतियों तथा भू-माफियाओं द्वारा कब्जायी गयी/जा रही है? क्यों?

- पेसा कानून को अँगूठा दिखाते हुए मित्तल, भूषण, जिंदल, पोस्को, वेदांत, टाटा जैसी कंपनियां बिना ग्रामसभा की सहमति के कैसे ज़मीनों पर कब्जा करने की तरफ बढ़ रही हैं?
- जिन कंपनियों के एम.ओ.यू. के 5 वर्ष बीत गये और वे काम नहीं कर पाये उन्हें उड़ीसा, झारखंड समेत तमाम हिस्सों से क्यों नहीं भगाया जा रहा है तथा उनसे ज़मीनें क्यों नहीं वापस ली जा रही हैं?
- ऐसी खदानें जहां खनन बंद हो चुका है क्या उन्हें सरकारी मानकों के मुताबिक बंद किया गया है? क्या वहाँ वन लगाये गये हैं? अब इन परित्यक्त ज़मीनों का मालिक कौन है? क्या यह पहाड़, खदानें, वन वहां के मूलवासियों को वापस दी जा रही हैं? सूखे झरने, नदियों, वनों की भरपाई के बारे में क्या नीति है?
- कंपनियों/उद्योगों द्वारा आवश्यकता से अधिक हथियायी गयी ज़मीनों के बारे में क्या नीति है?
- बन्द हो गये उद्योगों/उपक्रमों/कारखानों की ज़मीनों के बारे में क्या नीति है?

क्या इस प्रस्तावित अधिनियम के संदर्भ में—

- विभिन्न समय में विभिन्न योजनाओं/परियोजनाओं के कारण विस्थापित हुए लोगों के संगठनों से बातचीत की गयी?
- कारपोरेट घरानों तथा राजनैतिक दलों से बातचीत सरकार के घोषित एजेण्डे में है फिर विस्थापितों से बातचीत न करना, उनके सुझाव न सुनना कितना लोकतांत्रिक है?

और—

एक दौर था जब अठारह एकड़ से ज्यादा जमीन यदि किसी के पास होती थी तो उसे अतिरिक्त भूमि कहा जाता था। सरकार उस जमीन को सीलिंग एक्ट के तहत जब्त करने की हकदार थी। परंतु आज हजारों—हजार एकड़ जमीन हथिया कर करोड़ों—अरबों रुपये के मुनाफा कमाने की छूट कम्पनियों, कारपोरेट्स को देने के लिए भूमि कानूनों में बदलाव किया जा रहा है। प्रस्तावित भूमि अधिग्रहण संशोधन भी उसी का एक प्रमुख हिस्सा है। सरकार ऐसी नीति बनाती हुई दिख रही है

जिससे कि जमीन धन कुबेरों की मुट्टी में कैद जो जाय और जमीन पर बरसों— पीढ़ी—दर—पीढ़ी से खेती करके अपनी जीविका चलाने वाले उससे वंचित कर दिये जायँ। अभी हाल में हरियाणा राज्य द्वारा की गयी पहल इसका मुकम्मल सुबूत है।

प्रलोभन का विकास:

प्रस्तावित अधिनियम में मुआवजे, क्षतिपूर्ति को जिस तरह बढ़ा—चढ़ा कर दिखाया जा रहा है उसकी झलक तभी मिल गयी थी जब हरियाणा राज्य सरकार ने अपनी नयी भूमि—अधिग्रहण नीति की घोषणा करके तथा इसे 7 सितंबर 2010 से प्रभावी बनाने का ऐलान करते हुए प्रलोभनों की एक नयी फेहरिस्त जारी कर दी थी। ऐसा लगता है कि यह प्रलोभन सरकारों द्वारा इस इरादे से दिये जा रहे हैं कि किसी भी प्रकार किसानों, आदिवासियों को बहला—फुसलाकर उनकी जमीनें कम्पनियों को सहजता से दी जा सकें।

अतएव आज जरूरत है:—

- कृषि भूमि की न्यूनतम सीमा तय की जाय; जिस तरह वनों की है।
- बाजारोन्मुखी योजनाओं, निजीकरण तथा बाजार की ताकतों की स्वच्छंदता पर रोक लगायी जाय।
- उत्पादन एवं योजनाओं—परियोजनाओं का आधार देशवासियों की जरूरत हो न कि कारपोरेट का मुनाफा।
- कृषि, पर्यावरण, बढ़ती बेरोजगारी, नष्ट होती स्थानीय व्यवस्थाओं को दृष्टिगत रखते हुए ही इस तरह के कानून बनाये जायँ।
- भूमि—अधिग्रहण को तत्काल प्रभाव से रोका जाय।
- प्रस्तावित भूमि—अधिग्रहण अधिनियम की समीक्षा की जाय।
- अभी तक किये गये भूमि—अधिग्रहण पर श्वेत—पत्र जारी किया जाय।
- भूमि—अधिग्रहण के संदर्भ में 'जन मत संग्रह' कराया जाय।
- जमींदारी विनाश अधिनियम, सीलिंग एक्ट, सी.एन.टी. एक्ट और एस.पी. टी. एक्ट जैसे कानूनों को सख्ती से लागू किया जाय।
- संविधान के अनुच्छेद 5 की अवहेलनाओं के दोषियों के विरुद्ध दण्डात्मक कार्यवाही की जाय।

कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती

लहनों से डर कर नौका पार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।

नहीं चींटी जब ढाना लेकर चलती है,
चढ़ती दीवारों पर, औं बार फिसलती है।
मन का विश्वास रंगों में साहस भरता है,
चढ़कर गिरना, गिरकर चढ़ना, न अन्वयता है।
आखिर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।

डुबकियां सिंधु में गोतारवोर लगाता है,
जा जा कर खाली हाथ लौटकर आता है।
मिलते नहीं सहज ही मोती गहरे पानी में,
बढ़ता दुगुना उत्साह इसी हैरानी में।
मुट्ठी उसकी खाली हव बार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।

असफलता एक चुनौती है, इसे खीकार करो,
क्या कभी रह गई, देखो और सुधार करो।
जब तक न सफल हो, नींद चैन को त्यागो तुम,
संघर्ष का मैदान छोड़ कर मत भागो तुम।
कुछ किये बिना ही जय जय कार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की कभी हार नहीं होती।

- सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

पॉपुलर एजुकेशन एण्ड एक्शन सेंटर (पीस) प्रतिबद्ध और अनुभवी लोगों का ऐसा समूह है जो स्थानीय एवं व्यापक स्तर पर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को मजबूत करने की दिशा में प्रयत्नशील है।

इस क्रम में जीवनयापन के लिए जूझ रहे व्यक्तियों एवं समुदायों और अपनी अस्मिता को बचाए रखने तथा जनतांत्रिक मूल्यों के लिए संघर्षरत जन समूहों की जानकारी एवं ज्ञान में बढ़ोत्तरी करना पीस का मुख्य सरोकार रहा है।

विगत कुछ वर्षों से पीस समान सोच वाले समूहों और जन संगठनों के बीच संवाद की प्रक्रिया चला कर व्यापक स्तर पर चलने वाले जन आंदोलन और गठबंधन की प्रक्रिया को भी मजबूत करने हेतु प्रयत्नशील है।

मौजूदा पुस्तिका की तर्ज पर ही हमने पहले भी आम जन जीवन को प्रभावित करने वाले मुद्दों पर शिक्षण सामग्री का निर्माण व प्रकाशन किया है। इस क्रम में कुछ महत्वपूर्ण सामग्री निम्न हैं:

- ज्ञान की पूंजी पर पूंजी का शिकंजा
- पूंजी के निशाने पर पानी
- बाजारीकरण के दस साल
- भारतीय अर्थव्यवस्था की हकीकत
- आर्थिक उछाल की असलियत
- The Noose is Tightening - AOA (July Framework)
- GATS Primer
- नकेल कसती जा रही है
- कहीं पर निगाहें, कहीं पर निशाना : वन अधिकार अधिनियम 2006
- उड़ीसा के जनसंघर्ष : सबक और चुनौतियाँ
- PEOPLE'S STRUGGLES OF ORISSA : Lessons and Challenges
- परमाणु ऊर्जा : सस्ती साफ बिजली या महाविनाश को बुलावा!
- हिमाचल प्रदेश के जनसंघर्ष : न्याय के लिए बढ़ते कदम
- कहीं पे निगाहें, कहीं पे निशाना : प्रस्तावित भूमि अधिग्रहण (संशोधन) बिल
- परमाणु ऊर्जा : संदर्भ और सवाल

PEACE

पॉपुलर एजुकेशन एण्ड एक्शन सेंटर

A-124/6, दूसरी मंजिल, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-110016

फोन व फ़ैक्स: 011-26968121 / 26858940

ईमेल: peaceact@vsnl.com